ATISHAY KALIT

A Referred International Bilingual Research Journal of
Humanities, Social Science & Fine-Arts

ROSE (January-June) Vol. 6, Pt. A Sr. 11 Year 2017
ISSN 2277-419X
RNI-RAJBIL01578/2011-TC

Chief Editor :
Dr. Rita Pratap (M.A. Ph.D.)
Co-Editor :
Dr. Shashi Goel (M.A., Ph.D., PDF)

Mailing Address :
Dr. Rita Pratap
ATISHAY KALIT
C-24, Hari Marg, Malviya Nagar, Jaipur-302017
Phone - 0141-2521549 Mobile : 9314631852
INDIA

Editor Writes

Dear Friends

I am glad to inform you that this Referred International Bilingual Research Journal "Atishay Kalit", Rose issue (Jan-June 2017) has entered into its 6th successful year. I thank all my contributors (Research Scholars) for their co-operation. You all will be happy to know that this journal will soon be affiliated with U.G.C.

– **Dr. Rita Pratap**

CONTENTS

1.	Editor Writes	*Dr. Rita Pratap*	2
2.	महिला चित्रकारों की भारतीय कला में स्थिति, परिस्थिति	डॉ0 अंजू चौधरी	5
3.	रबाब वादन शैली एवं परम्परा (उत्तर भारतीय संगीत के अप्रचलित वाद्यों के संदर्भ में) रबाब	डॉ. प्रीति शर्मा	11
4.	सितार वादन पर गायकी अंग का प्रभाव एवं विकास	डॉ. अंकित भट्ट	14
5.	संगीतकार रवीन्द्र जैन का व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. वीणा जैन अंशुमन शर्मा	19
6.	सुरश्रृगांर और सुखहार वादन शैली (उत्तर भारतीन संगीत के अप्रचलित वाद्यों के सन्दर्भ में) सुरश्रृंगार	डॉ. प्रीति शर्मा	21
7.	नृत्याचार्य बाबूलाल पाटनी	डॉ. अंजलिका शर्मा प्रिया गुप्ता	25
8.	राजस्थान के प्रमुख प्रज्ञाचक्षुओं का संगीत के क्षेत्र में योगदान	डॉ. वीणा जैन अंशुमन शर्मा	31
9.	डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग का संगीत के क्षेत्र में योगदान	सोनू शर्मा	34
10.	संगीत जगत का अनूठा व्यक्तित्व पं. पन्नालाल घोष	डॉ. वीणा जैन सीमा सैनी	38
11.	भारतीय सांगीतिक वाद्यों में – सरोद	डॉ. ज्योति सारस्वत	42
12.	अज्ञान प्रतीाकत्मकता से रुपांकित प्रतीकात्मकता की ओर	प्रेरणा चौधरी	47
13.	हमारी विरासत हमारे कस्बे–जिला झुन्झुनू(राज0)	डॉ0 श्रीकृष्ण यादव	50
14.	तिलोनिया : लोक कला को संरक्षित एवं प्रोत्साहित रखने का एक सफल प्रयास	श्रीमति सविता शर्मा	54

15.	सामरिक दृष्टि में भारत चीन सम्बन्ध	डॉ. सदफ सिद्दिकी	59
16.	ब्रिटिश कालीन समाचार–पत्रों के विज्ञापनों में प्रतिबिम्बित सामाजिक वर्ग	डॉ. सर्वदमन मिश्र विजयश्री शर्मा	64
17.	Illustrated Manuscripts of Himachal Pradesh	Dr. Amit Kumar	73
18.	Positive Health Psychology In The Light Of Indian Tradition	Dr. Jaishree Jain	83
19.	An Analytical Study of Ajanta caves and its relevance in Mural Paintings	Abdul Salam Khan	90
20.	Museum of Islamic Art Doha (Qatar)	Dr. Rita Pratap	102
21.	Therapeutic Effects Of Relaxation, MindfulnessMeditation And Yoga On Mental And Physical Health	Dr. Jaishree Jain	106
22.	Indian Migration and the Gulf	Dr. Shashi Goel	113

डॉ0 अंजू चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, ललित कला विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

महिला चित्रकारों की भारतीय कला में स्थिति, परिस्थिति

"As a woman, I have no country; as a woman, my county in the whole world"

– Virginia Woolf

उपरोक्त कथन से सिद्व है कि नारी शक्ति विश्व मे देश काल जाति धर्म एवं अन्य भौतिक संकीर्णताओं से परे है इसलिए जीवन के प्रत्येक पहलू में नारी की महत्ता अवर्णनीय है। नारी प्रकृति का अनुपम उपहार है। तब भला कला जगत जिसमें की नारी सौन्दर्य को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। उसका इतिहास में कला सृजन में पिछड जाना बडा ही आश्चर्यजनक लगता है मध्यकालीन भारतीय कला इतिहास में वह कला सृजन में सक्रिय न रह कर मात्र कला सृजन की प्रेरण ाा तक सीमित रही। यह बडी विडम्बना है कि कला सृजन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्ररेणा स्रोत्र, सौन्दयाभिव्यक्ति का मुख्य केन्द्र बिन्दु नारी ने स्वंय कला सृजक बनने में पुरूष कलाकारो की तुलना में अपनी स्थिति को नगण्य बनाये रखा क्योकि उस समय की कुछ ही महिलाओं ने कला सृजन में भाग लिया। परन्तु समय कभी समान नहीं रहता आज महिलाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा को बेहतर तरीके से प्रस्तुत किया है अतः कला सृजन में भी उन्होने अपनी प्रतिभा को आध ुनिक कला में प्रस्तुत किया है।

भारतीय कला क्षेत्र में ही नहीं वरन् विश्व स्तर पर आज भी कला जगत मे महिलाओं की भागीदारी सर्वथा कम है, इतनी कम की चौका देने वाली है। कला विथिका की एक संरक्षिका गेमा रॉल्स बैन्टली ने 2012 की कला नीलामी बिक्री के सौ शीर्षस्थ कलाकारो की सूची के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि एक भी महिला कलाकार का नाम उस सूची में नहीं था। सभी पुरूष कलाकार थे जिनमे कुछ मृत व कुछ जीवित थे। उन्होने सामान्यत कला क्षेत्र में महिलाओ के कार्य संख्या का स्तर बहुत निम्न पाया जैसे कि पुर्वी लन्दन में 43 कलाकृतियों में मात्र 14: महिलाओ द्वारा रची गयी थी। वेस्टमिनिस्टर (लन्दन) में 386 कलाकृतियों मे से 8: ही महिलाओ द्वारा रची गयी थी। लन्दन की राष्ट्रीय कला विथिका में 2300

कलाकृतियों मे से 2.7ः कलाकृतियों महिलाओं से सम्बन्धित पायी गयी अर्थात कला जगत मे लैगिक असमानता विश्वस्तरीय है। रॉल्स बेन्टली ने इस प्रश्न को उठाया तथा साथ ही कलाओं में लैगिंक सन्तुलन को प्रोत्साहन देने के लिए कला जगत को चेताया, कि यदि महिला कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जाए तो अनेकों प्रतिभावान कलाकार जो छोटे स्तर पर छोटी कला विथिकाओं में अपनी कलाकृतियाँ प्रदर्शित कर रही है, विश्व स्तर पर उन महिला कलाकरो को पहचान मिलेगी।[1]

विश्व स्तर पर आज भी महिला कलाकारों के कम होने के बावजूद भारतीय कला जगत में इस स्थिति में सुधार आया है। आजादी के बाद समकालीन भारतीय कला में महिला कलाकारों का योगदान अलग से रेखांकित किया जाना चाहिए। पश्चिमी व भातीय कला के इतिहास में बहुत लम्बे समय तक महिलाएँ कला जगत में उपेक्षित रही है।[2] बीसवी शताब्दी में धीरे–धीरे महिलाओ ने अपनी कला सृजन की प्रतिभा को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है वैसतो भारत में प्राचीन ग्रन्थों में भी महिलाओ के कलाकार होने की पुष्टि होती है जैसे कि महाभारत में ऊषा की सखी चित्रलेखा ने उसके स्वपन को चित्रित किया था, भारतीय चित्रकला इतिहास में यदा कदा महिला कलाकारों द्वारा चित्रण करने की पुष्टि होती है जैसे कि पटना शैली में दक्षो बीबी, व सोना कुमारी ने भारतीय त्यौहरो व उत्सवों के चित्र बनाये है। परन्तु उनकी यह भूमिका पुरूष कलाकारों की तुलना में नगण्य प्रतीत होती है।

भारतीय लोककला परम्परा को प्रवाहित रखने में अवश्य महिला कलाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जैसे कि हाल ही में श्रीमती मोतीकर्ण कपुरी देवी व सोनाबाई का नाम मधुबनी लोककला के साथ गंगा देवी का बाटिक कला के साथ जुडा हुआ है। ऐसी ही अनेको अनजान महिला कलाकारों ने लोककलाओं को भारत में जीवित रखा है। इस प्रकार भारतीय लोकलाओं में महिलाओं की बडी हिस्सेदारी रही है।[3]

बीसवी शताब्दी की महिला कलाकरो में सुनयनी देवी जो कि टेगौर परिवार की सदस्या थी, का नाम चिरपरिचित है सुनयनी देवी ने भारतीय पुराणों और मिथक शास्त्रो से प्रेरित होकर 30 वर्ष की उम्र में चित्र बनाना शुरू किया। बगांल के पट चित्रों से इनकी शैली प्रभावित थी। उन्होने न केवल अपने चित्रो को प्रदर्शित किया वरन् उन्होने अपने समय की कला गतिविधियों पर कई लेख लिखे तथा अन्य महिलाओ को कला सृजन को प्रेरणा प्रदान की, परन्तु यह दुर्भाग्य पूर्ण है कि बहुत कम म.ि हलाओं ने अपना समस्त जीवन कलाओ को समर्पित किया।[4] फिर भी ब्रिटिश शासन काल में ही कोलकता में 1879 ई0 मे युवा महिला कलाकरों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। जिसमे सुनयनी देवी को उनकी कला के लिए 'सेलीब्रेटी स्टेटस' दिया गया। इसी समय की अन्य महिला कलाकरों में सुकुमारी देवी, प्रतिभा

टैगोर, सुशीला, लीला मेहता तथा सविता टैगोर का उल्लेख मिलता है।[5]

बहुत से कला समीक्षक और कलाकार अमृता शेरगिल, जोकि बीसवी शताब्दी की मुख्य महिला कलाकार थी, की कलाकृतियों को आधुनिक भारतीय कला के एक प्रारभिक बिन्दू के रूप में देखते है अमृता शेरगिल की माता हंगेरियन थी तथा पिता भारतीय सिख। जिससे उन्हे पूर्व और पश्चिमी की विरासत मिली, कला मे अमृता शेरगिल के समक्ष एक केन्द्रीय समस्या अपनी भारतीय नियति की खोज की थी। इसके लिए उन्होने पश्चिमी कला के साथ–2 भारतीय कला की समृद्व परम्परा को पहचानने की कोशिश की, इसी का परिणाम यह हुआ कि आधुनिक भारतीय कला में महिलाएं स्वंय को अधिक आश्वस्त महसूस करने लगी। एक प्रकार से अमृता शेरगिल कला क्षेत्र में हासोन्मुख नारीत्व के लिए अवतार रूप में प्रगट हुई। उन्होने स्वंय की रचानात्मक नवीनता के द्वारा एक सामान्य संस्कृति में शास्त्र विरूद्व वातावरण प्राप्त किया। आज जब हम भारतीय चितेरो की बात करते है तो अमृता का नाम आते ही ऐसा व्यक्तित्व सामने आ खडा होता है, जिसकी कला पूर्व और पश्चिम की कला शैलियों के संगम मात्र रूप में ही नहीं बल्कि भारत में आधुनिक कला के जन्मदाता के रूप में प्रतिष्ठित की जा सकती है।[6] इस प्रकार भारत की आधुनिक चित्रकला के इतिहास में उनका नाम नींव के पत्थरों में गिना जाता है। अपनी कला, स्वभाव, चरित्र तथा व्यक्तित्व में अमृता को लन्दन निवासी कवि बायरन का भारतीय नारी संस्करण कहा गया है।[7] सुप्रसिद्ध कलाविद्ध श्री केशव मलिक ने अपने एक लेख में अमृता को बोधगम्य अनुश्रुति कहा है। और उनकी तुलना अमेरिका के युवा स्यल्विया प्लॉथ, जिन्होने कम आयु में ही अधिक ऊचाईयों को प्राप्त किया, के साथ की है। क्योंकि दोनो के कृतित्व में निष्कपटता, सरलता, स्पष्टवादिता, ऋजुता,निष्पक्षता,प्रत्क्षता और एक प्रकार का विद्युतीय स्पर्श है। स्यल्विया की भॉति अमृता ने जीवन को प्रदर्शित किया है। अपने समय के अन्य कलाकारो से हटकर अमृता ने रचनात्मकता व कल्पना के साथ जीवन को प्रस्तुत किया है, और इस प्रकार कल्पनाशील चिन्तन, मनन, विमर्श की ओर कलाकरों को प्रेरित किया।[8]

1960 के दशक में भारतीय कला जगत में महिला कलाकारो की संख्या अत्यधि ाक बढी, साथ ही महिलाओं ने कला विषय पर लेखन कार्य तथा कला संग्रह कार्य भी प्रारम्भ किया जैसे कि देवयानी कृष्णा, केकू गांधी, पिल्लू पोचकवाला, जया अप् पासामी, आदि। अंजली इला मेनन, अमीना अहमद कर, अर्पिता सिंह, अर्पणा कौर और नीलिमा शेख अनुपम सूद, माधबी पारेख, मीरा मुखर्जी, मृणलिनी मुखर्जी, शक. ीला, नलिनी मालिनी, गोगी सरोज पाल आदि महिला कलाकारो ने अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की जिससे अन्य महिला कलाकारों को प्रोत्साहन मिला और अनेके

महिलाओं ने कला को एक पेशे के रूप में अपनाया। अनेको महिलाओं ने अपनी व्यक्तिगत रूचि व योग्यता अनुकूल कला की विविध विधाओ में परम कौशल और प्रसिद्धि को प्राप्त किया जैसे कि ग्राफिक में अनुपमसुद का काम, जिनका समकालीन चित्रकला में महत्वपूर्ण योगदान है वे शिल्पी चक्र था अन्य अनेक कला संस्थाओं की सदस्या रही। उन्हे ललित कला अकादमी का 1973 में राष्ट्रीय पुरस्कार, 1975 में राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक, 1971 में तथा 1975 में ऑल इण्डिया फाईन आर्टसोसाइटी का पुरस्कार तथा अन्य अनेक प्ररस्कार दिये गये। ग्राफिक कलाकारों के 'ग्रुप8' की संस्थापक अनुपूम सूद ने ब्रिटिश काउन्सिल स्कालरशिप के अर्न्तगत स्लेड स्कूल ऑफ आर्ट लन्दन में छापा–चित्र (प्रिंट मेंकिंग) की शिक्षा ली।[9] ग्राफिक कला में एक अन्य महत्वपूर्ण नाम देवयानी कृष्णा का भी आता है। कोलाज पेन्टिंग में बंगाल की शकीला का नाम उल्लेखनीय है शकीला एक सब्जी विक्रेता की पत्नी होते हुए आज भारत की श्रेणी प्राप्त कलाकरों की सूची में अपना नाम दर्ज किया है 1980 के दशक में बी0आर0 पनेसर की मदद से वह कला जगत में आयी और बगांल में काम करते हुए विश्व स्तर पर अपना नाम स्थपित किया।[10] इसी प्रकार पेंटिंग में अर्पिता सिंह, नलिनी मालिनी, गोगीसरोज पाल, रेखारौडवित्य आदि चितेरियों के काम ने समकालीन भारतीय कला में एक ऐसे 'फेमिनिस्ट एंगल' को जन्म दिया है जो नारो और सतही समझ से मुक्त है।[11]

अनेक आधुनिक कलाकारों की पत्नियॉ आज स्वतंत्र रूप से एक बडी कलाकार के रूप मे पहचानी जाती है जैसे कि परमजित सिंह की पत्नी अर्पिता सिंह 1960 से कलाजगत में सक्रिय भूमिका निभा रही है। फ्रांस में भारत महोत्सव के सिलसिले में प्रतिष्ठित जार्ज पांपिदू केन्द्र में अर्पिता सिंह की कलाकृतियों प्रदर्शित की गयी। फंतासी काम में उनकी एक विशिष्ठ पहचान है उनकी बेटी अंजूम सिंह भी आध ुनिक कला को अपनी मौलिक चित्रभाषा द्वारा समृद्व बना रही है। मनुपारेख की पत्नी माधवी पारेख, व उनकी बेटी मनीषा पारेख भी कला जगत में अत्यन्त संवेदनशलि कलाकार है राइस पेपर व हैडमेड पेपर पर उनके अमूर्त रंग–रूपाकार एक साधना की तरह है। कलाकार सुबोध गुप्ता की पत्नी भारती खेर ने अपनी अनुठी प्रयोगधर्मी कलाकृतियॉ में बिंदीयों का प्रयोग किया है। बिंदी को उन्होने एक दिलचस्प कला अनुभव के साथ चित्रित कर बिंदी के अर्थ व जगह दोनो को ही बदल दिया है उनकी ये कलाकृतियाँ उनकी विशिष्ठ रचनाशीलता का परिचय देती है। चित्रकार अभिताभ दास की पत्नी मोना राय की कला में भी टेक्चर का केन्द्रीय महत्व है। कलाकार बलबीर कट्ट की पत्नी लतिका कट्ट भी कला जगत में सक्रिय रूप से भागीदार है। सुप्रसिद्व कलाकार विनोद बिहारी मुखर्जी की पत्नी लीला मुखर्जी एक उच्च स्तर को मूर्तिशिल्पकार रही। उनकी बेटी मृणलिनी मुखर्जी तन्तुमूर्तिशिल्प में

अपनी विशिष्ठ पहचान रखती है। मूर्तिशिल्प मे एक अन्य नाम मीरा मुखर्जी का है 1953 में उन्होने एक स्कॉलरशिप के सिलसिले में म्यूनिख में काम किया। 1956 से अपने पति सुप्रसिद्व मूर्तिशिल्पी श्री विटठ्ल के साथ लगातार प्रदर्शनियां आयोजित करने वाली कलाकार बी प्रभा की कला में भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है 1958 में उन्हे बम्बई आर्ट सोसाईटी का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। उनके चित्र बैंकांक, यूरोप तथा जापान अनेक देशों में प्रदर्शित किये जा चुके है। ऑल इण्डिया फाइन आर्टस एण्ड क्राटस सोसाइटी ने भी उन्हे पुरस्कृत किया है।

1940 में निजामपुर आंध्रप्रदेश में जन्मी लक्ष्मागौड ने विभिन्न कला विधाओ में काम किया है। 1977 में साओ पाओलो द्वैवार्षिकी में भी उन्होने अपनी कलाकृतियों को प्रदर्शित किया है। उनकी कला में ग्रामीण चित्रो और इरॉटिक कल्पना शक्ति का बडा प्रभावशाली मेल मिलता है शिल्पा गुप्ता का भी समकालीन कला मे एक बेमिसाल योगदान है शहरो मे बढती व्यावसायिकता से चिंतित होकर शिल्पा गुप्ता ने इटंरएक्टिव इंस्टालेशन, वीडियो आर्ट, इंटरनेट आदि की मदद से उल्लेखनीय काम किया है। भारत की पहली वेब केंद्रित चित्रकार मानी जाती है आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति पर व्यग्ंय करते हुए उन्होने अपनी एक मल्टीनेशनल कम्पनी ही खोल डाली जो किडनी, हीरो और प्रेमपत्रो के फेयर ट्रेड का दावा करती है।[13] एक अन्य कलाकार शकुंतला कुलकर्णी ने प्रिंटमेंकिग, पेटिंग टेक्सस्टाईल मूर्तिशिल्प और वीडियो आर्ट सभी माध्यमो में काम किया है। महिलाओं के दमन को लेकर कला में कई तरह के काम किये है। रजा पुरस्कार से सम्मानित सुजाता बजाज ने रंगो के समृत संसार और अमूर्तन के कारण अपनी पहचान बनायी है इन्होने फ्रांस से स्कॉलशिल्प भी प्राप्त की, इसी क्रम में अमीना अहमद कर का नाम बहुत महत्वपूर्ण वह भारत की अकेली कलाकार है जो पेरिस में सीधे पिकासों के प्रशिक्षण में काम कर चुकी है ऑयल पेंटिंग, म्यूरल, और ग्राफिक तीनों ही विधाओं में वह सक्रिय रही। प्रिंट मेंकिंग की तकनीक को उन्होने पेरिस के प्रसिद्व हेटर स्टूडियों में सीखा था। उन्हे कला स्कॉलर के रूप में भी जाना जाता है बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार अनिता दूबे ने मूतिशिल्प, इंस्टालेशन, फोटोग्रफिक आदि विधाओ में प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है।13

शांति निकेतन, कोलकता से प्रशिक्षित जयश्री वर्मन भी कला के क्षेत्र मे विशिष्ट स्थान रखती है उन्होने फ्रांस से भी प्रशिक्षण प्राप्त किया है उनका कहना है–'' जब मै सोती हूँ, तो सपनो में कला नजर आती है। जब मै जागती हूँ तो प्रत्येक रूपाकार और गति में मुझे कला नजर आती है मेरी सांसो मे कला बसी हुई है''उनके चित्रों की परम्परागत आकृतियॉ आधुनिक दुनिया में प्रवेश पाना चाहती है।[14]

एक अन्य कलाकार जयश्री चक्रवती अपनी कलाकृतियों मे टेक्सचर का बहुत ही संवेदनशील प्रभाव लिए हुए प्रयोग करती है मूर्त से अमूर्त की उनकी यात्रा जटिल है, परन्तु उसमे एक पूर्ण अनुभव है। प्रख्यात प्रिंटमेकर जरीना ने देश–विदेश में बहुत नाम कमाया है उन्होने पेरिस के सुप्रसिद्व एतेलियेर 17 से प्रिंट मेकिंग का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। प्रारम्भ में उन्होने वुडकट में भी अच्छा काम किया। प्रिंटमेकिंग में जरीना अपनी संवेदनशीलता और तकनीकी दक्षता के लिए विशिष्ट रूप से जानी जाती है। बहुचर्चित कलाकार अंजलि इला मेनन ने विदेशों में भारतीय कला को प्रचारित किया है उन्होने कई भिति चित्र भी बनाये है। अनियंत्रित उल्लास से युक्त आरंभिक काम के बाद अंजलि की पेटिंग्स में बाद में परिपक्वता, गहनता, स्थिरता के साथ–2 व्यथा तथा विश्वसनीयता भी देखी जा सकती है। उन्होने अन्य चित्रकारों से भिन्न एक लंबा रास्ता तय किया है– लोकप्रिय अमूर्त कला से शुरू कर यर्थाथ का लगभग क्लासिकल विश्लेषण करने तक का रास्ता।[16] इसी प्रकार अर्पणा कौर का काम महिलाओं–बुद्धिजीवियों और कलाकरों में उभरती उस चेतना का प्रतीक है जो न केवल अपने व्यक्ति को खोजना चाहती है। और समाज के साथ नई तरह से जुडना चाहती है बल्कि कला में नई संवेदनाओ का विकास भी करना चाहती है अपनी अनेको चित्र श्रृंखलाओं में अर्पणा ने बडी साफगोई से जीवन की स्थितियों जो मुख्यता महिलाओं की दशा तथा हमारे समाज मे बढती हिंसा से संबन्धित है, की अभिव्यक्ति की है जैसे कि वुमन इन इंटीरीअर्स, वर्ल्डगॉज ऑन, गार्जिअन्स ऑफ लॉ विडोज ऑफ वृंदावन व अन्य अनेक चित्र श्रृखलाएं।[16] इसके अतिरिक्त शीला मखीजानी, शांभवी, शिप्रा भट्टाचार्य, सीमा घुरैया, दयानिता सिंह, नवतोज़ अलताफ,शीबा छही, श्वेता गर्ग, निराली दिनेशचन्द्र, रीमा बंसल, रीना सैनी कल्लट, रूमा मेहरा, सुरेखा, रिनी धुमाल, भारती दयाल आदि अनेकों महिला कलाकार आधुनिक कला को समृद्धशाली व गौरवपूर्ण बना रही है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. "woman in Art: why are all the great artist man?"- An Article On Internet
2. भारद्वाज, विनोद– वृहद आधुनिक कला कोष, नई दिल्ली पृ0 सं0–11
3. वहीं
4. 21st Century Indian Art" An Article from Vikipedia,
5. डॉ0 जोशी अर्चना– विश्व इतिहास में महिला चित्रकार, जयपुर 2007–08 पृ0सं0100
6. डॉ0 अग्रवाल आर0ए0–कला विलास, मेरठ 2015 पृ0सं0 202,
7. Badar-Ud-din Tyab: Echoes of Stale tattle, The Hindustan Times- 30.9.1984, Page. 8

डॉ. प्रीति शर्मा
प्रवक्ता, संगीत
संस्कृत यूनिवर्सिटी, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

रबाब वादन शैली एवं परम्परा
(उत्तर भारतीय संगीत के अप्रचलित वाद्यों के संदर्भ में)
रबाब

रबाब एक प्राचीन वाद्य हैं। जो कि अफगानिस्तान में प्रमुखता में पाया जाता हैं। भारत में भी यह उत्तर पश्चिमी भाग में देखने को मिलता हैं। इसके अतिरिक्त रबाब का उल्लेख मध्यकालीन संगीत ग्रंथों तथा कुछ अन्य साहित्यिक ग्रंथों में भी उपलब्ध होता हैं।

रबाब का आकार और ध्वनि स्पेनिश गिटार से मिलती जुलती हैं। रबाब एक विशिष्ट किस्म का सुंदर वाद्य यंत्र हैं। रबाब पश्चिम व अरबी जगत का ऊद वाद्य यंत्र अजन्ता वीणा से काफी मिलता जुलता हैं। रबाब पर्शिया व अरब में जाकर रिबेक के नाम से पहचाना जाने लगा था। रिबेक के बारे में कहा जाता हैं कि वायलिन की उत्पत्ति रिबेक द्वारा ही हुई हैं। उत्तर भारतीय संगीत में जिस प्रकार वीणा का संबंध देवी सरस्वती से मानते हैं। उसी प्रकार प्राचीन संगीत वाद्य रबाब की परम्परा का संबंध भी रूद्र था। शिव से प्रारम्भ होता था। इसके अतिरिक्त रबाब एक ऐसा तंत्री वाद्य हैं। जिसका उल्लेख मध्यकाल संगीत ग्रंथों में सर्वाधिक हुआ हैं।

रबाब की बनावट

रबाब अवरोट व देवदार की लकड़ी का बना होत हैं। देखने में आधे कटे नाशपति जैसा लगता हैं व इसका निचला भाग बकरी के चमडे से व ऊपरी भाग कपूर की शीट से ढका रहता हैं। इसमें 6 तार होते हैं और इसे बाएँ हाथ की अंगुलियों के नाखूनों द्वारा तार को इकसार जगह पर दबाकर बजाया जाता हैं। चंदन की लकड़ी व बांस से निर्मितकोण से इसे सुखासन में बैठकर दाएँ घुटने के पास

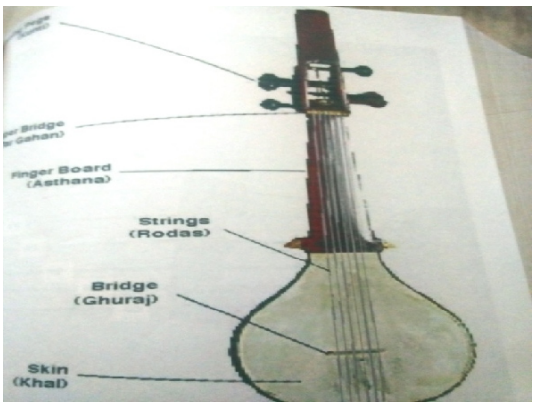

रखकर बाएँ कंधे के पास टिका कर बजाया जाता हैं एवं रबाब की वादन शैली एंव परम्परा का वर्णन करते हुए बताया जाता हैं कि इसमें तांत का तार होने से इसकी गूंज (आस) कम होने के कारण इसमें विलम्बित मीड़े बजाना संभव नहीं हो पाता तथा चिकारी के तार न होने के कारण स्वर का भराव नहीं रह पाता। इसलिए इसकी वादन शैली विलम्बित न होकर मध्यलय के आलापचारी की हैं। वैसे ही चिकारी के तार का काम सुर के तार से ही लिया जाता हैं। राग के आलाप में संगीत के विभिन्न अलंकरण जैसे आस, छूट गमक आदि का प्रयोग किया जाता हैं। रबाब की वादन शैली में लड़ी जोड़ा और तार परन का अपना विशेष महत्व हैं। रबाब में आलाप के जोड़ अंग के काम व तारपरन ही मुख्य होता हैं व इसमें आलाप के जोड़ अंग का कार्य भी मुख्य होता हैं। विलम्बित लय में आलाप करना जैसे कि वीणा वाद्य पर किया जाता हैं। उस तरह ही इसके आलाप में जोड़ अंग का काम मुख्य हैं। आलाप के दो मुख्य हैं। अंश होते हैं। एक अनिबद्ध और दूसरा निबद्ध एक में छंद मात्रा एवं तात् का व्यवहार नही होता। किंतु दूसरे में संगीतोपयोगी छंद मात्रा और ताल का व्यवहार हैं। इन दोनों अंशों के मध्यवर्ती और संलग्नकारी होने से आलाप के मध्य लय को 'जोड़' कहा जाता हैं। दूसरे शब्दों में जोड़ आलाप के स्वरो में गति तो होती हैं। किंतु लय या ताल द्वारा नहीं होती, आलाप की समाप्ति कर स्वरों में चिकारी द्वारा बराबर की लय में स्वर वादन प्रारंभ किया जाता हैं। आरंभ में प्रत्येक बार स्वर के बाद चिकारी बजाई जाती हैं। किंतु बाद में लय बढ़ती जाती हैं। चिकारी के प्रयोग घटते जाते हैं। जोड़ वादन में भी आलाप जैसे ही खण्ड होते हैं तथा प्रत्येक खण्ड की समाप्ति सम दिखाकर की जाती हैं। जोड़ के अंतिम चरणों में स्वरों की गति तारों के समान द्रुत हो जाती हैं तथा तान एवं तोड़ों के ढंग की सामग्री बजाई जाती हैं। कई–कई घंटे तक एक ही राग का वादन करना व मौलिक सूझ द्वारा प्रत्येक बार नई–नई तानों का वादन करना मुख्य विशेषता हैं।

वीणा के समान रबाब पर झालावादन होता हैं। इसलिए तानसेन के वंशजों के रबाब वाद्य व उसकी शैली का वाद्य जगत में अपना एक अलग स्थान हैं।

वादन शैली के अनुसार रबाब वाद्य का प्रयोग 14वीं शताब्दी से गुरूनानक व

भाई मरदाना के समय (सिख सम्प्रदाय में) कीर्तन, भजन व लोकधुनों के रूप में ही प्रयुक्त होता था।

यह भी कहा जाता हैं कि रबाब सिख इतिहास की अनमोल धरोहर हैं। जिसके आधार पर कहाँ जाता हैं कि रबाब का प्रारंभिक रूप भजन कीर्तन के रूप में प्रयुक्त होता था। तत्पश्चात् अर्द्धशास्त्रीय संगीत और अपने विकसित रूप में शास्त्रीय संगीत हैं। जिसे दूसरे शब्दों में कहा जाता हैं कि रबाब वाद्यों का प्रयोग लोक संगीत अर्द्धशास्त्रीय संगीत एवं शास्त्रीय संगीत इन तीनों क्षेत्रों में हुआ हैं। रबाब भारतीय सरोद का पूर्ववर्ती वाद्य था। जो भारत के प्रमुख वाद्यों में गिना जाता था। प्रमाणों के अनुसार खाब भारत के अन्य अनेक वाद्यों का भी अग्रसर था। अगर शास्त्रीय रूप में कहा जाए तो रबाब वाद्य का आविष्कार तानसेन से माने जाता हैं एवं तानसेन के वंशजों ने इस वाद्य को अपनाकर इसकी प्रतिष्ठा बढाई इसी प्रकार इस परम्परा को आगे चलाते हुए आपके पुत्र, विलास खां व उनके भाई प्यार खाँ, वास़त खाँ, जाफ़र एवं पौत्र उदय सेन आदि ने इसकी शैली एवं परम्परा को कायम रखा। अर्थात् इसका लुप्त (अप्रचलित) होने का कारण इसकी तबली का हैं।

क्योंकि रबाब वाद्य को हर मौसम में बजाया नहीं जा सकता हैं और बरसात में इसकी तबली ढीली हो जाती हैं। जिसके कारण यह धीरे–धीरे लुप्त होने लगा हैं। जिसके कारण आज इसका स्थान सरोद ने ले लिया हैं। परंतु आज भी रबाब वादनशैली के सभी विद्वान कलाकार इन शैलियों को लोहा मानते हैं व प्रेरणा लेते हैं।

संदर्भ सूची

1. अबुल फज़ल आइने अकबरी, पृष्ठ सं. 270
2. सादिक अली खाँ काननें मूसीको, पृष्ठ सं. 309
3. Rabab Sarad and Related Instruments Page No. 60
4. मुसलमान और भारतीय संगीत, आ. बृहस्पति पृ. सं. 77
5. सेनिया घराने की शैली एवं परम्परा, डॉ. वीणा जैन, पृष्ठ सं. 178

डॉ. अंकित भट्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई
टोंक

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

सितार वादन पर गायकी अंग का प्रभाव एवं विकास

सितार वादकों पर गायकी के प्रभाव की चर्चा करने से पूर्व यह जान लेना भी आवश्यक है कि एक कुशल गायक के लिए तंत्री वाद्य का ज्ञान होना भी आवश्यक है। डॉ. प्रकाश महाडिक के अनुसार ष्पुराने गुणियोंष् को यह कहते सुना गया है कि तंतु वाद्य के वादन का गुण गायक को सुरीला बनाता है। वर्तमान के अनेक प्रसिद्ध गायक अच्छे वादक भी रहे हैं। कंठ को सुरीला बनाने के लिए ही तो गायक तानपूरे के साथ अभ्यास करता है। इस उदाहरण से यह प्रमाणित हो जाता है कि गायकों की परम्परा में वीणा वादन की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। तंतु वाद्यों के वादन से गायक की श्रवण क्षमता में सूक्ष्मता बढ़ती है, क्योंकि वादन श्रवण क्रिया पर ही आधारित है। इसलिए स्वर ग्रहण की सूक्ष्म संवेदना वादन के द्वारा विकसित होती है, जिससे गायक का सुरीलापन अधिक पुष्ट होता है।[1]

वाद्य संगीत की प्रस्तुतिकरण के समय कंठ संगीत प्रत्यक्ष न होते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप में वादक के साथ मानसिक तौर पर रहता है। कंठ संगीत में वाद्य प्रत्यक्ष रूप में साथ रहता है या बिना वाद्य के कंठ संगीत सम्भव नहीं है। जहाँ अभिव्यंजना में कंठ संगीत बिना वाद्य के असमर्थ है, वहाँ से वाद्य संगीत की प्रथम सीढ़ी प्रारम्भ होती है। जिस प्रकार ईश्वर के साथ एकरूपता स्थापित होने से ईश्वर के दर्शन होते हैं, उसी प्रकार गायन और वादन में परस्पर एकरूपता स्थापित होने से सच्चे संगीत का श्रवण होता है।

कंठ संगीत और वाद्य संगीत का तात्त्विक अन्तःसम्बन्ध है, जिससे वह एक दूसरे के अति निकट आ जाते हैं। दोनों में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, अलंकार, आलाप, तान, ताल, लय आदि तत्त्व समान हैं। अपनी सामान्य स्थिति में दोनों स्वतन्त्र हैं, विकास की स्थिति में इनके परस्पर प्रभाव बढ़ते जाते हैं। वास्तव में प्रभाव की दृष्टि से और कला की उत्कृष्टता की दृष्टि से गायन और वादन का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक भी है।

सितार वादन में दाहिने हाथ की अपेक्षा बाँएं हाथ की तैयारी पर जोर देना भी गायन का प्रभाव है। 19वीं शताब्दी में दाँए एवं बाँए हाथ, दोनों की तैयारी पर ध्यान दिया जाता था पर आजकल बाँए हाथ की तैयारी मिज़राब के बोल से अधिक महत्व रखती है। इसका कारण सितार पर ख्याल गायकी का प्रभाव है।[2]

सितार पर बजाई जाने वाली द्रुत गति के तोड़े, जिन्हें शफिक्रेबन्दीश भी कहा जाता है, ख्याल एवं कव्वाली से ली गई हैं। "According to Pt. Sudarshanacharya, fast taans today played in Zig-Zag pattern in the Gat Technique of Sitar is known as Fikrebandi. It was derived from Khyal or Quwwali."[3]

आज के युग में सितार वादन पर गायन का प्रभाव साफ देखने को मिलता है। अधिकांश महफिलों में सितार पर गायन की बंदिशें ही सुनने को मिलती हैं। ख्याल की बंदिश से शुरू होकर सितार वादक समापन ठुमरी की बंदिश से करता है। डॉ. प्रतीक चौधरी अपनी पुस्तक लिखते हैं कि आजकल फिरोजखानी गतों का चलन कम हो गया है क्योंकि उनका स्थान धीरे–धीरे ख्याल की गतों ने ले लिया है। "Various kinds of patterns of Tanas have been introduced due to the influence of vocal music. The use of heavy Gamakas, Tanas like Chut-taan, Sapat-taan etc. are a result of this influence. During the earlier years, though many great instrumental compositions were based on vocal compositions, the instrumental technique never allowed the vocal compositions to dominate. In recent years, it can be seen that some Gharanas prefer to give prominence and pre-dominance to the vocal compositions while performing a Drut instrumental composition. This also is another reason, which has resulted in less attention being played to the stroke patterns in Razakhani compositions."[4]

विभिन्न बोलों के मिश्रण से जो बोल प्रधान विस्तार बनते हैं वे तोड़ा कहे जाते हैं, जिनमें छन्दों का प्राचुर्य होता है। ध्रुपद व ख्याल में इसे ''बोल–तान'' कहते हैं। जहाँ स्वर प्रधान विस्तार हो, वे ''तान'' कहे जाते हैं। ध्रुपद के बाद ख्याल, टप्पा ठुमरी आदि शैली से ऐसी तानों का ग्रहण सितार आदि वाद्यों ने किया।[5]

अधिकांशतः सितार के महान् वादकों ने अपनी शिक्षा बीनकार ध्रुपदियों तथा ख्यालियों से ली है। सच्चे सेनिया आज भी अपना वादन या स्वर का लगाव ध्रुपद या बीन शैली में कर रहे हैं।

सितार की लोकप्रिय मसीतखानी शैली के बारे में कहना है कि मसीतखानी गत ध्रुपद शैली पर आधारित होती है। इसकी लय विलंबित होती है तथा 12 मात्रा से शुरू होती है।

सितार के वादन के विकास के साथ मसीतखानी गतों का जन्म हुआ, जो ध्रुवपद पर आधारित होती थीं। इसके बाद तोड़ा (अन्तरा) भी बजाया गया। ख्याल गायकी का प्रचार बढ़ने से पहले की गत और तोड़े का स्थान स्थायी अंतरे और तानों ने ले लिया।

ज्यों–ज्यों सितार के रूप में परिवर्तन हुआ, त्यों–त्यों वादन सामग्री में भी परिवर्तन आ गया। सन् 40–42 तक सितार के दो बाज़ (मसीतखानी और रज़ाखानी) प्रचलित थे। ख्याल गायन का प्रचार बढ़ा। गायक विलंबित और द्रुत ख्याल दोनों गाते थे, क्रमशः इसी का अनुसरण तंत्र–वादकों ने भी किया। मसीतखानी को विलंबित लय में और रज़ाखानी को द्रुत में एक के बाद एक वादक बजाने लगा।

रज़ाखानी गतें, जिनका आविष्कार गुलाम रज़ा खाँ साहब ने किया था ख्याल, लय बोल की ठुमरी एवं तराना, जो राजा वाज़िद अली शाह के काल में लोकप्रिय थे, पर आधिारित थीं।[6]

रज़ाखानी गतों की रचना लखनऊ और उसके आस–पास के क्षेत्र में हुई इन गतों की रचना विशेष कर ठुमरी के आधार पर इनको सितारखानी ठेका में (मध्य लय तीन ताल) बद्ध किया गया था। जिन गतों की रचना तराना के आधार पर हुई उनकी गति भी कुछ द्रुत रखी गयी और उनके बोल भी अधिक रखे गये थे।

The Khyal Saili of vocal music has greately influenced instrumental music in North India. It has been mentioned in the previous chapter that the Masitkhani gat had been styled in the character of a bara khyal. The drut gat of today is often based on a chot? khyal. Much of the ornamentation used in instrumental music has come from the khyal Saili along with many types of tans. The style of ornamentation in khyal can be described as being more sharply accentvated, with faster glides between tones, then the more clearly defined ornamentation used in dhrupad. Finally, it appears that the general progression in performing gat vistar has been developed on the model of the khyal Saili.[7]

वर्तमान सितार वादकों ने ध्रुवपद और बड़े ख्याल के अनुसरण के अतिरिक्त ठुमरी, टप्पा और तराना के अनुसरण से भी सितार वादन में गमक, कण, मुर्की, खटका, कृन्तन और ज़मज़मा जैसे सौन्दर्य उपकरणों से सुसज्जित कर सितार बाज को एक नया स्वरूप प्रदान किया।

अतः वर्तमान सितार वादन में आलाप व जोड़ आलाप में ध्रुवपद के समान चारों चरण का आलाप किया जा रहा है तथा गतकारी में तान ख्याल अंग से व

तिहाईयों आदि को तबले के अनुसरण से विकसित किया गया है वह सर्वविदित है कि मसीत्खानी व रज़ाखानी की वह मूल बोल बानियों का आज कठोरता से पालन अवश्य नहीं हो रहा है परन्तु अन्य सौन्दर्य उपकरणों के अनुसरण से सितार बाज का अत्यधिक विकास किया जा चुका है। आज सितार का वादन अत्यधिक कठिन और चित्ताकर्षक बन चुका है। इस परिवर्तन का मुख्य श्रेय हमारे वर्तमान सितार वादक प्रतिनिधियों को है। जिनके अथक् परिश्रम और प्रयासों ने सितार वादन को यह सम्मान दिलवाया है।[8]

Pt. Bimal Mukherjee of Calcutta is of the opinion that the Baaj of Sitar has changed dramatically after the impact of Khayal on it. He feels that almost every nuance of the voice can be played on Sitar.[9]

तन्त्र में विशेषकर सितार में ख्याल गायन की बन्दिशों के समान ही गतें बज रही है तथा तान वादन भी ख्याल अंग से हो रहा है। सितार वादन में मीड़, गमक, कण, खटका, मुर्की व ज़मज़मा आदि सौन्दर्य उपकरणों का समावेश ख्याल व ठुमरी गायन शैलियों के अनुसरण से ही किया गया है। सितार में झाले का भाग तराना की लयकारी और बोल बांट का अनुसरण है।

गायन में और तन्त्र में अन्तर मात्र इतना है कि गायक तानों के बाद तिहाइयां नहीं लेते और वादक तिहाईयां भी लगाते हैं। जहां तक आलाप और जोड़ आलाप का प्रश्न है उसमें नोम–तोम के आलाप को आज भी सितार वादक ध्रुवपद के आधार पर ही प्रस्तुत करते हैं। आलाप के अतिरिक्त गायन के जितने भी सौन्दर्य उपकरण हैं, उनका समावेश आज सितार वादन में पूर्णरूप से हो चुका है। ऐसा कोई गले का काम नहीं है जो सितार में न हो रहा हो। आलाप से लेकर गतकारी तक गायन अंग सितार में आ चुका है।

आज गायकी अंग का विकास यहाँ तक हो गया है कि गायकी अंग के सितार–वादक बजायी जाने वाली चीज को पहले गाकर सुना देते हैं, फिर उस गायन की सूक्ष्म स्वर छायाओं को अपनी कल्पना के माध्यम से तंत्र में विकसित करते हैं। आज के श्रोताओं के मध्य यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि कण्ठ से संगीत का उद्गम भले ही स्वीकारा जा रहा हो, मगर वह उसकी सीमा नहीं है। स्वरों की जो सूक्ष्मतम भावाभिव्यक्ति आज सितार–वादक अपने तन्त्र में कर रहा है, वह कण्ठ से भी परे है।

संगीत एक अमूर्त कला है, विशेषकर वादन। तन्त्र–वादन में ऐसी क्षमता उजागर हो रही है कि वह अपनी कल्पना द्वारा राग के स्वरों से ऐसे–ऐसे बिम्बों का निर्माण करेगा कि राग का एक मूर्त रूप श्रोता के मानस–पटल पर अंकित हो जायेगा।

राग की भावना को साकार रूप देने में गायकी अंग की वादन शैली अपनी कल्पना से शास्त्रीय गायन और को लेकर एक ऐसे छोटे उद्यान का निर्माण करने में सक्रिय है, जो केवल सुगन्ध ही बिखेरता है। यह सम्भावनायें भी व्यक्त की जा रही हैं कि गायकी अंग के वादकों ने अगर अपने ऊपर अंकुश रखा, तो वे श्रोताओं को नवरसों का रसास्वादन कराने में सक्षम हो जायेंगे।

गायक कितना ही उत्तम गायक हो, वह गायन के सभी अंगों का प्रयोग करके अपनी साधना से श्रोता को मुग्ध भी कर रहा हो, मगर मुरली का एक स्वर प्रत्येक स्तर के व्यक्ति को आकर्षित कर लेता है – ऐसी सम्भावनाएँ गायकी अंग के वादन के विकास में पायी जा रही हैं। मगर बात वही है कि वादन अपने ऊपर अंकुश रखकर अपने वादन की सहजता–सरलता को वादन की विशेष प्राविधिकी में उलझा न ले। अगर स्वर और वादन–क्रिया की श्नटबाजीश से गायकी अंग का सितार–वादक अपने को बचा गया और यदि कुछ श्रोताओं के प्रशंसात्मक शब्दों–कठिन, जटिल, असम्भव कर दिखाया–आदि को अपने ऊपर लदने न दिया, तो गायकी अंग का वादन अपना आकर्षण और प्रभाव निश्चित ही बढ़ायेगा–ऐसी उज्ज्वल सम्भावनायें पायी जाती हैं।[10]

संदर्भ ग्रन्थ

1. महाडिक, डॉ. प्रकाश – भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य – पृष्ठ सं. 42
2. Chaudhuri, Dr. Prateek.- Plucked Instruments of Northern India - Pg. 44
3. Same - Pg. 35
4. Chaudhuri, Dr. Prateek- Plucked instruments of Norther India - Pg. 45
5. जैन, डॉ. भानुकुमार. ैजतपदहमक पदेजतनउमदजे पद भ्पदकनेजंदप डनेपब . च्हण् 47
6. Chaudhuri, Dr. Prateek- Plucked instruments of Norther India - Pg. 36
7. Slawek, Stephen M.- Sitar Technique in Nibaddh Forms - .Pg. 31

डॉ. वीणा जैन (शोध निर्देशिका)
अंशुमन शर्मा (शोधार्थी)
संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

संगीतकार रवीन्द्र जैन का व्यक्तित्व और कृतित्व

रवीन्द्र जैन का जन्म 28 फरवरी, 1944 को अलीगढ़ में हुआ था। रवीन्द्र जैन भारतीय हिन्दी फिल्मों के प्रसिद्ध संगीतकार तथा गायक थे। रवीन्द्र जैन जन्म से प्रज्ञाचक्षु थे इसके बावजूद उन्होंने अपने मन की आंखों से दुनिया को समझा। उन्होंने दुनिया के सामने एक मिसाल पेश की। फिल्मों के साथ–साथ मशहूर ध ार्मिक टेलीविजन धारावाहिक रामायण और लव–कुश में संगीत दिया और गायन भी किया। जन्म के समय से ही रवीन्द्र जैन की आंखे बंद थी जिन्हें पिता के मित्र डॉ. मोहनलाल ने सर्जरी से खोला।

साथ ही यह भी कहा कि बालक की आंखों में रोशनी है, जो धीरे–धीरे बढ़ सकती है, लेकिन इसे कोई ऐसा काम मत करने देना जिससे आंखों पर जोर पड़े। रवीन्द्र जैन ने डॉक्टर की नसीहत को ध्यान में रखकर संगीत की राह चुनी जिसमें आंखों का कम उपयोग होता है। रवीन्द्र जैन को पहली नौकरी बालिका विद्या भवन में 40 रूपये महीने पर मिली। वर्ष 1968 में उनकी मुलाकात पार्श्वगायक मुकेश से हुई। रवीन्द्र जैन का पहला फिल्मी गीत 14 जनवरी 1972 को मोहम्मद रफी की आवाज में रिकॉर्ड हुआ।

श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) में 1981 में भगवान बाहुबली के महामस्तिकाभिषेक का भव्य आयोजन हो रहा था। एक हजार साल में एक बार होने वाले इस विशेष

आयोजन के लिए देश–विदेश से जैन समाज के प्रतिष्ठित लोग पहुँचे थे। मुख्य आयोजन स्थल तक पहुँचने का रास्ता चढ़ाई वाला था। अचानक लोगों के कानों में भगवान बाहुबली की वंदना के शब्द पड़े। पालकी में बैठे रवीन्द्र जैन तन्मयता से भजन गा रहे थे। उनकी आवाज ने पहले से आलौकिक हो गए माहौल को भक्ति रस में डुबो दिया।

उस समय तक रवीन्द्र जैन संगीतकार, गायक व गीतकार के रूप में खासे विख्यात हो चुके थे। अपनी व्यस्तता के बावजूद वे श्रवनबेलगोल आए और सामान्य श्रद्धालु की तरह पूरे आयोजन का हिस्सा बने। जब भी तरंग उठती वे गाने लगते और उनकी आवाज सुनने वालों को सम्मोहित कर जाती। बातचीत में बेहद विनम्र और कम लेकिन मीठा बोलने वाले रवीन्द्र जैन ने संगीत की दुनिया में जो जगह बनाई उसके लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। सामान्य व्यक्ति के लिए बिना किसी सम्पर्क के फिल्मों में जगह बनाना मुश्किल हो जाता है। रवीन्द्र जैन तो दृष्टिबाधित थे। बचपन से ही यह स्थिति थी।

उन्होंने अपनी आंखों की रोशनी पूरी तरह लौटाने के लिए ऑपरेशन करवाया। ऑपरेशन कोई चमत्कार नहीं कर पाया। नजर काफी कमजोर थी और उसके ठीक होने की कोई संभावना नहीं थी। यह आघात किसी भी बच्चे के लिए जीवन भर का अभिशाप हो सकता था। लेकिन इसी अभिशाप को एक चुनौती मान कर रवीन्द्र जैन ने एक नई राह तलाश ली। आंखे नहीं थी तो मन की आंखों का सहारा लिया। एक बार उन्होंने कहा भी था कि तन की दो आंखे तो सो भी जाती है लेकिन मन की हजार आंखे हमेशा जगती रहती है। मन की आंखों से रवीन्द्र जैन ने जो कमाल दिखाया उसने पूरी दुनिया को कायल कर दिया।

उन्होंने बॉलीवुड में अपने करियर की शुरूआत फिल्म ''सौदागर'' से की। इस फिल्म में उन्होंने गीत भी लिखे थे। संगीत के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें पदमश्री से सम्मानित किया। वर्ष 1985 में प्रदर्शित राजकपूर की फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' के लिये रवीन्द्र जैन को सर्वश्रेष्ठ संगीतकार के फिल्मफेयर पुरस्कार से सम्मानित किये गये।

रवीन्द्र जैन के मुख्य गीतों में 'गीत गाता चल, ओ साथी गुनगुनाता चल' जब दीप जले आना, ले जाएंगे, ले जाएंगे, दिलवाले दुल्हनियां ले जाएंगे, ले तो आए हो हमें सपनों के गांव में, ठंडे–ठंडे पानी से नहाना चाहिए, एक राधा एक मीरा, अंखियों के झरोखों से, मैने जो देखा सांवरे, सजना है मुझे सजना के लिए, हर हंसी चीज का मैं तलबगार हूँ, श्याम तेरी बंसी पुकारे राधा नाम, सुन सायबा सुन,

डॉ. प्रीति शर्मा
प्रवक्ता, संगीत
संस्कृत यूनिवर्सिटी, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

सुरश्रृगांर और सुखहार वादन शैली
(उत्तर भारतीन संगीत के अप्रचलित वाधो के सन्दर्भ में)
सुरश्रृंगार

19 वीं सदी के मध्य में विकसित होने वाला एक प्रमुख वाद्य सुरसिंगार था जो कि ध्रुवपद रबाब का ही परिवर्धित रूप था। हिन्दी व उर्दू के इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों में 'सुर' व 'श्रृगांर' से हुई है। जिसका अर्थ है। ''सुरों का श्रृगांर, मो. हम्मद करम इमाम इस वाद्य के उदय तथा विकास के दौर के गवाह थे। उन्होंने इसे सरोद के समान बताया है। अतः सुरश्रृंगार उत्तर भारत में पाए जाने वाले तीर तार वाद्यों का मिश्रण है एवं सुरश्रृंगार वाद्य का वर्णन किसी संस्कृत ग्रंथ में उपलब्ध नही होता इस वाद्य की रबाब से हुई है व सुरश्रृंगार सेनिया रबाब का परिष्कृत संस्करण ।

सुरश्रृंगार सेनिया घराने के रबाब वाद्य का परिकृत संस्करण है। लेकिन सुरश्रृंगार का उदर लकड़ी का होता है इसे निजराब से वजाया जाता है। इसकी लम्बाई चार फीट होती है। इसमे दो फ्रेट्स लगाने का रिवाज है जो आमतौर पर धातु की होती

है। यह सारिका विहीन या परदों से रहित वाद्य है। इसके सिरे पर स्वरों के लिए खूटियाँ लगी रहती है। और नीचे तूम्बा जिससे साज की गूंज बढ़ने मे सहायता मिलती है। इसे बायें कंधे पर तथा नीचे वाले भाग को जहां पर रखकर दाहिने हाथ की तर्जनी और अगूठे से लोहे के कोण को पकड़ कर प्रहार करते है।

सुरश्रृंगार गम्भीर प्रकार के संगीत तक ही सीमित है। मुख्य रूप से ध्रुवपद धमार शैली हेतु विलम्बित मध्य और द्रुत लय में राग का आलाप बजाने के वाद कलाकार परवावज की संगति में प्रायः अपने वादन का अंश झालों के प्रकार के साथ करता है। जिसमें जोड़ वादन, तार परन का वादन, झाले का वादन करना, मुख्य रूप से है। जोड़ वादन, ''आलाप के दो अशं होते है। एक अनिबद्ध दूसरा निबद्ध एक में छंद मात्रा व लय का व्यवहार नही होता किन्तु दूसरे में संगीतोपयोगी छदं माला और ताल का व्यवहार है। इन दोनो अंशो के मध्यवर्ती और संलग्नकारी होने से ही आलाप में मध्य लय को जोड़ कहा जाता है।

तारपरन का वादनः– तबला परवावज इत्यादि वाद्य वादन में उपयोगी परण समूह के छंद के अनुकरण से वाद्य संगीत में वादित बोल समन्वय को तारपरन कहा जाता है।

झाले का वादन करनाः– विभिन्न प्रकार की तानों का वादन करना, अलाउद्दीन खाँ साहब ने इसके वादन में आलाप जोड़ालाप, झाला, विलम्बितगत, द्रुतगत, तानलड़ी, लडगुथाव, लडलपेट, कतर, तारपरन, झाला ठोक झाला यह क्रम रखा हैं। सुरश्रृंगार वादक कलाकारों ने इस शैली के साथ–साथ अपन परम्पराओं को कायम रखते हुए इस वाद्य को वाद्य जगत में लोकप्रिय बनाया, किंतु इसकी वादन शैली कठिन होने के कारण आधुनिक युग में इस वाद्य की परम्परा प्रायः लुप्त हो चुकी हैं।

अतः सरसिंगार का प्रचार सरोद के वर्तमान रूप के विकास के साथ–साथ तिरोहित होने

या।

सुरबहार यानि 'सुरों की बहार' इस वाद्य का विकास शाहेबदाद खान ने किया

था। सुरबहार की उत्पत्ति सितार के पश्चात् हुई हैं। सुरबहार की रचना 19वीं सदीं में की गई थी। सुरबहार उत्तरी भारत के मधुरतम वाद्य यहां में से एक हैं। इसका आविष्कार लगभग 120 वर्ष पहले हुआ था व सुरबहार उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयोग किया जाने वाला एक तार वाद्य हैं। जबकि कुछ विद्वानों के मतनुसार सुरबहार का विकास 1825 में हुआ था। सुरबहार सितार के ही आकार का बडा स्वरूप हैं। जिसको बजाने की प्रक्रिया भी सितार के समान हैं। सुरबहार की उत्पत्ति तथा विकास सितार के ही समानान्तरण हुआ हैं। अर्थात् सुरबहार की उत्पत्ति का कारण यह रहा हैं कि जिस समय यह प्रचलित था। उस समय खानदानी लोग अपने खानदान से बाहर अथवा पुत्रों के अतिरिक्त अन्य शार्गिदों को बीन की शिक्षा नहीं दी जाती थी। इसी के पूरक के रूप में सुरबहार का आविष्कार हुआ। क्योंकि इस वाद्य पर बीन अंग बजता हैं। इसलिए गुरू अपने शार्गिदों को सुरबहार पर बीन की शिक्षा प्रदान करते थे।

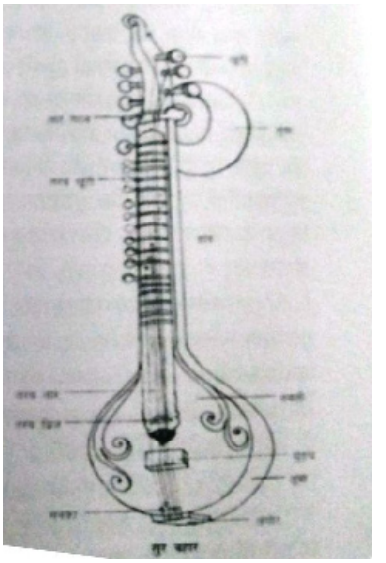

सुरबहार की बनावट

इसका आकार सितार से बडा होता हैं। इसमें सितार के भाँति एकतूम्बा लगा होता हैं। लेकिन सुरबहार नीचे से चपटा होता हैं और ऊपरी सिरे पर इसके सितार के भाँति एक तूम्बा लगा हा. ता हैं व तार सितार के समान होते हैं। लेकिन इसके तार मोटे होते हैं। जिससे इसकी आवाज माधुर्य व गहराई युक्त होती हैं। इसे भी कोण व मिजराब से बजाया जाता हैं। सुरबहार विशेष रूप से गंभीर शास्त्रीय शैली के संगीत बजाने के लिए उपयुक्त होती हैं।

सितार के गत और तोड़े सुरबहार पर नहीं बजाए जाते हैं। लेकिन ध्रुवपद शैली में आलाप, जोड़ और झाला भी इस पर बजाए जाते हैं। सुरबहार वाद्य यंत्र पर वीणा के अनुसरण से ध्रुवपद अंग का आलापचारी का प्रयोग अधिक मात्रा में तथा चार परदे तक मीड़ का काम करना। वीणा के समान दो अथवा तीन अंगुलियों का व्यवहार व युक्त बोल दो अंगुलियों द्वारा एवं चिकारी कनिष्ठ अंगुली द्वारा बजाना। झाले का काम बहुत कम और अधिकांश में बिल्कुल नहीं, गमक तान, हलक तान के अनुरूप तान एवं तिहाई इत्यादि कम बजायी जाती थी। अलाप के समान विस्तार की प्रधानता अधि क थी। गत तोड़ों के समान सिलसिले का अभाव एवं गत व विस्तार अंग की तान ही एकमात्र वस्तु थी। सुरबहार में आलाप जोड़, आलाप, झंकार पेश करने में काफी

प्रयोग में लाया जाता हैं। सुरबहार का वास्तविक सौंदर्य, माधुर्य तथा आकर्षण मीड़ तकनीक में देखने को मिलता हैं। इसमें अंगुलियों की फिसलन से स्वरों को दबाकर तथा तरबों तारों की गूंज के द्वारा मोहक प्रभाव उत्पन्न किया जाता हैं। जो कि सुनने वालों को भावविभोर कर देता हैं। अर्थात् शिष्य वंशजों के प्रभाव से अब इसमें अलाप जोड़ – अलाप, झाला, विलम्बि गत, द्रुतगत, तान, तोडे आदि सभी बजाए जाते हैं। अतः इस द्रुपद शैली में बजाया जाता हैं। यह अपनी चार अष्टकों की रेंज अधिस्वरकों की बहुतायत तथा स्वर की स्पष्टता के कारण इसे भारतीय वाद्य में सबसे प्रमुख कहा जा सकता हैं। अतः प्रत्येक कलाकार की वादन अथवा गायन शैली की कुछ अलग ही विशेषताएँ होती हैं। जो उसके गायन तथा वादन में झलकती हैं व कुछ उसकी अपनी स्वयं की विशेषता भी होती हैं। सुरबहार में भी अलग–2 कलाकारों की वादन शैली की विशेषता रही हैं। जिसे उस्ताद मुश्ताक अली खाँ साहब का तीन मिजराबों द्वारा वादन करना, व गुलाम मोहम्मद, सज्जाद मुहम्मद हैदर अली खाँ, इमदाद खाँ आदि अद्वितीय शैली के कलाकार रहे। जिसमें सज्जाद मुहम्मद बायें हाथ की तकनीक क्रन्तन में काफी निपुण थे एवं सुरबहार वादकों के अतिरिक्त एकमात्र सुरबहार वादिका अन्नपूर्णा देवी भी रही हैं। अर्थात् इसके लोप होने का कारण इसकी तत्तियों को स्वर में मिलाने की विधि में परिवर्तन से सुरबहार की आवश्यकता ही नष्ट कर दी।

सुरश्रृंगार एवं सुरबहार की परम्परा को निभाते हुए जाफर खाँ, वासत खाँ इनके सबसे बडे पुत्र अली मुहम्मद, हाफिज अली खाँ, पन्नालाल जैन, वैद्य अर्जनदास, गया प्रसाद मिश्र, बी चैतन्य देव, वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी आदि कलाकारों ने अपनी अपनी शैली का वादन करते हुए परम्परा को कायम रखा।

संदर्भ सूची

1. एस. एस पराजये – संगीत बोध – पृष्ठ सं0 – 144
2. म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेंट ऑफ इण्डिया, बी चैतन्यदेव
3. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ. लाल मीणा मिश्र, पृष्ठ सं0 – 49
4. डॉ. (श्रीमति) सुमति भुटाकर से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर
5. उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, वैष्णवता का एक और बिन्दु संगीत
6. Sitar and Sarod is the 18th and 19th Centuries By, Allien Minor

डॉ. अंजलिका शर्मा (शोध निर्देशिका)
प्रिया गुप्ता (शोधार्थी)
संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

नृत्याचार्य बाबूलाल पाटनी

जयपुर के गौरवपूर्ण संगीत इतिहास को सदियों तक अपनी कला साधना से जीवन्त बनाए रखने में यहाँ के कला समर्पित संगीत साधको का विशेष योगदान रहा है। सातत्व व परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में बीसबी शताब्दी का उत्तरार्ध संगीत के नवजागरण के रूप में जाना जाता है। यह वह कालखण्ड रहा है, जब संगीत घराने के घरोंदे से बाहर निकल कर कुछ नया उन्मेष पाने को उन्मुख हो चला था। जब संगीत मात्र प्रयोग तक सीमित न रहकर अपनी संपूर्णता की विकास यात्रा की और चल पड़ा और शनैः–शनैः संस्थागत अध्ययन अध्यापन मे पैठ बनाते हुए गंभीर चिन्तन मन्न एवं अनुसंधान का विषय बन गया। फलतः सूत्रपात हुआ– संगीत के प्रति एक समग्र दृष्टि का यानी संगीत को उसके सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने व समझने का। नवजागरण के इसी कालखण्ड में संगीतिक क्षितिज पर आर्विभाव हुआ, नृत्याचार्य बाबूलाल पाटनी का । अर्विभाव एक ऐसी प्रतिभा का जो नृत्य साधक होने के साथ–साथ कुशल प्रशासक व आदर्श गुरू भी थे।

श्री बाबूलाल पाटनी जी का जन्म 02 जून 1920 को जैन परिवार में हुआ। आपकी शिक्षा बी.ए. तक रही तथा कथक नृत्य मे अखिलभारतीय गांधर्व महाविद्यालय, बम्बई से अलंकार (एम.ए.) किया। आपके नृत्यगुरू पं. नारायण प्रसाद थे। नारायण प्रसाद जी जयपुर घराने के प्रसिद्ध नृत्यकार थे। इन्होने पाटनी जी को जयपुर कथक घराने की बारीकियाँ सिखाई जिनमे पैरो की तैयारी पर अधिक ध्यान दिया जाना व तत्कार में कठिन से कठिन लयकारियों, परणों जैसे गणशे परण, जाति परण, पक्षी परण, फरमाईशी परण, कविता पर नृत्य प्रस्तुत करना आदि है इन सभी विशेषताओं

की विधिवत शिक्षा प्रदान की।

बाबूलाल पाटनी जी का व्यक्तित्व प्रभावशाली व कठोर अनुशासित था। आप समय व चरित्र के बहुत पक्के थे। यह गुण आपके सभी शिष्यों में भी आपने सप्रेषित कर दिया। आप स्वभाव से सहज व सरल थे। सभी से समान व्यवहार करते है। आपने जीवन में अपने शिष्य–शिष्याओं के साथ कभी भेदभाव नही किया। जो नियम थे सभी के लिए समान थें। पाटनी जी के बहु–आयामी व्यक्तित्व से जुडे विभिन्न पहलु इस प्रकार है।

1. नृत्यकार के रूप में

नृत्य अनन्त रूपों एवं कल्याण की जननी है। इसके अनन्त रूपों की निष्पति ही नृत्याकृति है। एक नृत्यकार नृत्य में सांगीतिक रूप को विकसित करने के लिए प्रकृति और परम्परा से स्त्रोत ग्रहण करता है। परम्परा में तो पूरी जीवन पद्धति ही आती है और प्रकृति में यह सारा जीवन समाज।

नृत्यकार अपने स्व को भूलकर अपनी रचना करता है। अन्ततोगत्वा उसकी रचना ही उसका स्व बन जाता है। वह अपनी स्वान्तः सुखाय रचना में तल्लीन रहकर अपने कौशल को सार्थकता प्रदान करता है। वहीं है जो अपनी सांस्कृतिक पहचान की बुनियाद पर खड़े रहते हुए अपनी और वर्तमान की बात रखता है। उसकी बात (सोच) में आने वाले कल की सोच हो। जिस प्रकार एक शायर, एक लेखक अपनी कहानी अपनी लेखनी व जुबान से व्यक्त करता है उसी प्रकार एक नृत्यकार अपनी भाव–भंगिमाओं से व्यक्तिगत अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है।

ऐसे ही एक महान नृत्यकार बाबूलाल पाटनी थे। जिनकी नृत्य कला सबसे निराली थी। लय और ताल के अद्भूत चमत्कार उनके नृत्य से प्रदर्शित होते थे। जो कुछ वह अपने पैरों से दिखाते थे, उसमें परिश्रम अथवा प्रयत्न का आभास बहुत कम होता था। बड़ी आसानी से कठिन से कठिन तालों पर भी नृत्य का अच्छा प्रदर्शन किया करते थे। ताल और लय पर आपका पूरा अधिकार था कठिन से कठिन लयकारी बडी सरलता से दिखाते थे। धमार, सूल, ब्रह्म, आडा चौताल और गंजझम्पा आदि तालों पर घन्टों नृत्य किया करते थे। पाटनी जी की उदारता और उनकी सहृदयता उनके नृत्य में प्रतिबिम्बित होती थी। उनका व्यक्तित्व उनके नृत्य से प्रकाशित होता था। वह अपने नृत्य का भावात्मक सामंजस्य अपने दर्शकों के भावात्मक आनन्द से करते थे और अपने नृत्य को उनकी रूचि और उनकी समझ के अनुकूल भी बनाते थे। धमार ताल आपकों विशेष प्रिय थी।

पाटनी जी एक ही बन्दिश को, बिना उसके बोलों में काट–छांट किये, विभिन्न

तालों में सम से सम तक प्रस्तुत करते थे नृत्य विद्या में लय एवं प्रबन्धों की गणनाओं का इतना विस्तार देखकर दर्शक अंचमित हो उठाते थे। आपने कई नृत्य–गोष्ठियों में अपनी प्रस्तुति दी, पर्यटन विभाग द्वारा आयोजिक कार्यक्रमों में आपकी प्रस्तुति होती थी। जिनमें फर्श पर गुलाल बिछा कर उसके ऊपर चद्दर बिछाकर जब गजपरन करते थे और जब चद्दर उठाकर दिखाते थे तो उस पर बकायदा हाथी का स्वरूप बन जाया करता था। इसके अतिरिक्त तलवार पर नृत्य करना, बताशों पर नृत्य करना ओर बताशों का ना टूटना उनकी अद्भूत प्रस्तुति थी। यह गुण एक नृत्यकार के ध्यान और सन्तुलन की क्षमता को प्रदर्शित करता है। पाटनी जी के नृत्य में जयपुर घराने की प्रत्येक विशेषता का समावेश था। आपका नृत्य ओजपूर्ण व पौरूष प्रधान था हाथों को पूरा फैलाकर नृत्य करते थे, पैरों से भी दमदार आघात किया करते थे, अतः यह अत्यन्त जोशीला प्रस्तुतिकरण होता था।

आपने मीरा, सूर, तुलसी, आदि के पद व भजनों पर भी नृत्य किये। धार्मिक वृत्ति के कारण आप सात्विक श्रृंगार, भक्ति एवं कारूण रस का ही प्रदर्शन करते थे। आपकी प्रस्तुति भक्ति भाव से ओत प्रोत थी।

लयकारी जयपुर घराने का प्रमुख अंग है इसमें पाटनी जी ने अपनी लगन व अभ्यास से दक्षता अर्जित की थी। ना केवल तत्कार में अपितु तोडे, टुकडे, परणों में भी विभिन्न प्रकार की लयकारी दर्शाया करते थ। तत्कार में पौनगुनी लय से आरम्भ कर सवाई,ढेडी, पौने दुगुनी, तिगुन, चौगुन आदि से लेकर 16 गुन तक की लय दर्शाया करते थे। उसी प्रकार बन्दिशों में भी तिपल्ली, चौपल्ली, पंचपल्ली आदि तथा विभिन्न जातियों व यतिओं पर आधारित बन्दिशों की प्रस्तुति भी बड़ी सहजता से करते थे।

आप कठिन व अप्रचलित तालों में नृत्य प्रस्तुत करते थे अष्टंमगल, सवारी, ब्रह्मताल, गजझम्पा , बसन्त लक्ष्मी, मत्तताल, धमार आदि में कठिन से कठिन बोलों का प्रयोग तथा ताल अंग पर आधारित बन्दिशों पर प्रस्तुतीकरण आश्चर्य चकित करने वाला होता था।

बोलों की विविधता के अनेक प्रकार जयपुर घराने में प्रचलित है। जिनमें नाच, पाखवज, नटवरी एवं फमार्यशी बोल आदि में पाटनी जी अच्छी पकड़ थी। आपको नृत्य में नृत्त या ताल प्रधान पक्ष में गंगा–जमुना, त्रिवेणी जैसी कल्पनाओं का समावेश होता था साथ ही विभिन्न ग्रहों, यतियों, जातियों पर आधारित बन्दिशों का प्रयोग भी आपकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होता था।

नृत्य में बड़ी–बड़ी लम्छण परणों की प्रस्तुति और विलम्बित लय में बड़ी–बड़ी

परणों का विस्तार करने में आप कुशल थे। आपको अनेको गणेश परन कठस्थ थे। आपकी नृत्य में असीम उदारता, बहुतायत, अधिकता, प्रौढ़ता और कला तथा ज्ञान की भरपूरी ही का प्रदर्शन होता था। आपके अथाह ज्ञान का पता आपकी कला से ही चलता था। आपके प्रदर्शन से ही पता चलता था कि आप कथक नृत्य के समृद्ध, परिपूर्ण और आद्वितीय कलाकार थे। पाटनी जी ने अपनी नृत्य क्षमताओं को परिलक्षित कर अपने शिष्यों में सम्प्रेषित किया।

2. रचनाकार के रूप में

पाटनी जी एक कुशल कलाकार व सफल शिक्षक थे। आपके अनुसार एक अच्छे शिक्षक के लिए क्रिया के साथ शास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक है। आपने नृत्य के क्षेत्र में अनेक बन्दिशों की रचना की। ये बन्दिशें नृत्य की विशेषताओं तथा तकनीक की दृष्टि से बहुत सुन्दर है। आपकी बन्दिशे काबिले तारीफ होती थी। आपकी बन्दिशों में एक धा, दो धा व तीन धा की बंदिशे विशेष थी। तिहाईयाँ बनाना व छन्द बनाना आपकी प्रमुख विशेषता थी। तत्कार के सम्बन्ध में धिरकिट के बोल व धिकधिक जैसे कठिन बोल अपने प्रमुख शिष्यों को ही दिया करते थे।

आप उच्च कोटि के रचनाकार थे। आपकी अनेक बन्दिशो व रचनाओं का संकलन 'कथक के प्राचीन नृत्तांग' नामक पुस्तक में संकलित है जो प्रकाशक पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर द्वारा निर्मित है। आपके द्वारा रचित बन्दिशें अलग–अलग तालो में निबद्ध है।

उदाहरण के तौर पर 13 मात्रा (रासताल) में बेदम चक्करदार परन है।

''धिंतकिट धुमकिट तकधुम किट तक तक्कडान था।

धिंतकिट धुमकिट तक धुम किट तक तक्कडान था।

कत तक्कडान धाकत तक्कडान धा'' (1)–3 बार

पाटनी जी के द्वारा बनाई गई परनों का आज भी इनके शिष्य आपे नृत्य में प्रयोग करते है।

3. कथक गुरू के रूप में

बाबूलाल पाटनी महान शिक्षक थे जो बड़े प्रेम और परिश्रम से अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे। इसलिए उनके शिष्य उनसे बहुत स्नेह करते थे और श्रद्धा से उनके समाने झुकते थे। वह कथक नृत्य में मेहनत अथवा रियास को ही सबसे मुख्य और जरूरी बाते मानते थे। पहले तालीम और फिर मिजाज अथवा अपनी प्रतिभा। बगैर तालीम के कथक नृत्य के नियमों पर किसी का अधिकार नहीं हो सकता। उपज

अच्छी चीज है परन्तु बिना शिक्षा के उपज भी बेकार साबित होती है जिस तरह आपने शिक्षा पाई थी उसी ढंग से वह अपने शिष्यों को भी बताते थे। आप अक्सर कोई नयी या चमत्कृत करने वाली परन या बोल की रचना में व्यस्त रहते थे।

सन् 1956 में अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय की (महावीर दिगम्बर जैन हायर सैकण्डरी स्कूल, सी–स्कीम में) स्थापना हुई जिसमे आप नृत्य शिक्षक के पद पर आसीन थे। 1958 में आपके प्रतिनियुक्ति पर महाराजा गर्ल्स स्कूल छोटी चौपड़ में नृत्य शिक्षक के रूप में तीन वर्ष तक अपनी सेवाएँ दी। आप औपचारिक रूप से तो नगर परिषद् में हाउस टैक्स –इन्सपेक्टर के पर कार्यरत थे परन्तु नृत्य के प्रति जुडाव के कारण शाम को नृत्य की शिक्षा प्रदान करते थे। आपने कभी नृत्य शिक्षा देने का कोई शुल्क नहीं लिया। बस नृत्य के प्रति अपनी सच्ची लगन व सेवा से नृत्य शिक्षा प्रदान करते थे। आप संगीत विभाग में नृत्य शिक्षक के रूप में कार्यरत थे। परन्तु विद्यालय में आयोजित समारोह, गतिविधियों, संगोष्ठियों आदि के आयोजन का प्रशासनिक दायित्व पाटनी जी का ही था। स्वतंत्रत रूप से सभी कार्य सम्हालते थे। आपने गांधर्व से महाविद्यालय में स्नातकोत्तर (अलंकार) के कक्षाओं को पढ़ाने से लेकर, म्यूजिक अप्रेसियेशन की कक्षाएं भी लेते थे। आपने अपनी प्रमुख शिष्या गीता संघावी को नृत्य में शोध कार्य कारने हेतु प्रेरित किया। आपके मार्गदर्शन में गीता जी ने 'कथक के प्राचीन नृंत्ताग' विषय में राजस्थान विश्वविद्यालय से शोध कार्य किया। इसके अलावा संगीत व मंच कला संकाय कला से जुडे ऐसे अनगिनत छात्र–छात्राएँ जिन्होंने पी.एच.डी व एम.फिल. की डिग्री हेतु अपने अनुसंधान कार्यों में आपसे मार्ग–दर्शन प्राप्त किया जिनमें डॉ. प्रेम दबे, डॉ. माया रानी टाँक आदि उल्लेखनीय है। एक जागरूक शिक्षक के रूप में नृत्य व संगीत के हित में आपने अपने कार्यकाल में दायित्वपूर्ण सहिभामिता के साथ कई महत्वपूर्ण गोष्ठियों का आयोजन किया जिनमें उल्लेखनीय है।

प्रथम अखिल भारतीय कथक नृत्य सेमिनार का आयोजन जयपुर नगर में करवाया। जिसका विषय 'कथक नृत्य की विभिन्न विधाएँ एवं इसका उत्थान' था। 8से 11 फरवरी 1969 में रवीन्द्र मंच जयपुर में आयोजित इस सेमिनार में कथक नृत्य के सदियों पुराने इतिहास को कत्थक के मूर्धन्य कलाकारों ने एकमत होकर लिखवाने सहमत हुए। ये जयपुर संगोष्ठी की क्रान्तिकारी उपलब्धि थी। यह सब पाटनी जी की कुछ कर गुजरने की ललक थी, अदम्य इच्छा शक्ति थी । यह सब आपके भीतर के उसी 'दृढ़व्रती संगीत सेवक व्यक्तित्व' का ही तो प्रतिफलन था। आपका बहुमुखी व्यक्तित्व व कृतित्व आपकों जहाँ एक ओर नृत्य शिक्षक के रूप में शिक्षक के इतिहास में उच्च पद पर आसीन करता है वहीं दूसरी ओर संगीत व

कथक नृत्य के संरक्षक व संर्वधक के रूप में संगीतिक क्षितिज पर वैश्विक संप्रतिष्ठा से भी विभूषित करता है।

आप एक बेजोड़, धैयवान शिक्षक थे। आपकी शिक्षण पद्धति स्पष्ट एवं सुलझी हुई थी। किसी भी बन्दिश को इस प्रकार सिखाते व समझाते की बन्दिश से जुड़े भाव भलि–भांति समझ में आ जाते थे। आप विद्यार्थी की कल्पनाशक्ति के विकास पर बल देते थे। आप अभ्यास करने का इतना सही तरीका बताते थे, जिससे विद्यार्थी के नृत्य का कोई पक्ष कमजोर न रह जाय। आप पढन्त का खूब अभ्यास करवाते थे। क्योंकि सफल नृत्यकार बनने के लिए नृत्य के सैद्धान्तिक व क्रियात्मक पक्ष में संतुलित होना चाहिए। आपकी इस सुलझी हुई शिक्षण पद्धति से प्रभावित होकर भू.पू. मुख्यमंत्री एवं गवर्नर श्री मोहनलाल सुखाडिया की धर्मपत्नी इन्दुबाला जी ने भी आपसे कथक नृत्य की तालीम ली थी। यदि शिष्य में लगन, सीखने की क्षमता तथा परिश्रमी है तो वे उसे प्रोत्साहित कर उसकी यथासंभव सहायता करने को तत्पर रहते थे। गीता सघावी और पूनम जोशी दो ऐसी ही शिाष्या जो दीवाली व गर्मीयो की छुट्टियों में कथक नृत्य सीख पाती थी। आपमें प्राचीन आचार्यों के गुण के साथ–साथ वर्तमान कालीन शिक्षक के गुणों का सुन्दर समन्वय था सिखाने में आपने किसी जाति, धर्म का भेद–भाव नहीं किया। आपके इन्हीं गुणों के कारण आपके शिष्यों एवं समस्त विद्यार्थियों में आपके प्रति आदर था।

आप प्रत्येक विद्यार्थी को नृत्य शिक्षा में आत्म–निर्भर बनाना चाहते थे। इसका ज्वलंत उदाहरण पाटनी जी की अनेक शिष्याऐ है जिनमे गीता सांघवी, पूनम जोशी, रश्मि भनोत, कृष्णा भसीन, संगीता सिंघल आदि उल्लेखनीय है। पाटनी जी जो भी सबक सिखाते थे उसे बड़े प्यार से समझाते थे, प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़न्त करके ही नृत्य करवाते थे।

पाटनी जी ने अपने शिष्यो को नृत्य की शिक्षा के साथ–साथ व्यक्तित्व को भी को भी निखारा है सभी शिष्यों मे दो संस्कार प्रस्फुटित किये है। चरित्रक पवित्रता और समय पाबंदी का नियम उन्होने अपने सभी सहकमियों में भी उतारा यह आपके कठोर अनुशासन व व्यक्तित्व के प्रभावी गुण थे।

पाटनी जी एक नृत्यकार, रचनाकार व शिक्षक ही नही अपितु नृत्य के साध ाक भी थे। आपने नृत्यकला के प्रति निःस्वार्थ भाव से कार्य किया। आपके गुरूजी ने आपसे वचन लिया था कि आप नृत्य को व्यवसाय नही बनाऐगे। जिसका आपने जीवन पर्यन्त पालन किया। वह जीवन पर्यन्त निःशुल्क शिक्षा दी। ऐसे संगीत समर्पित नृत्य साधको को शतः शतः नमन है।

डॉ. वीणा जैन (शोध निर्देशिका)
अंशुमन शर्मा (शोधार्थी)
संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

राजस्थान के प्रमुख प्रज्ञाचक्षुओं का संगीत के क्षेत्र में योगदान

भारतवर्ष धर्मप्रधान तथा आध्यात्मक प्रधान देश है। प्राचीनकाल से अब तक भ. ारतीय संगीत को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है, क्योंकि संगीत द्वारा आलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है तथा वह आनन्द ईश्वर का स्वरूप है। संगीत संस्कृति का दर्पण है। राष्ट्र तथा समाज की आत्मा है, संगीत कला द्वारा राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न की जा सकती है भारत में हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी धर्मो के प्रचार में संगीत का सहारा लिया जाता है।

मनव जीवन का प्रत्येक पहलू संगीतमय है। जिसमें कि परिस्थिति स्थान के अनुसार सांगीतिक विभिन्नता होती है। संगीत एक विश्व भाषा है, क्योंकि संगीत भाषा, धर्म, जाति व देशों को एक करता है। भारत देश के राजस्थान प्रदेश में भी सांस्कृतिक जीवन में संगीत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

राजस्थान प्रदेश अपनी साहित्यिक–सांस्कृतिक परम्पराओं को अपने परिवेश में समेटे हुए निरन्तर प्रगति के पथ पर रहा है। भक्ति, शक्ति और दानशीलता के लिये यह प्रदेश विश्व में अपना अनूठा महत्व रखता है, स्वतन्त्रता–संग्राम में भी प्रदेशवासियों का अतुलित योगदान रहा है। साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र में भी राजस्थान अपनी सांस्कृतिक विरासत को समेटे हुए है। यहाँ की प्रकृति और संस्कृति का अद्‌भुत सम्बन्ध है। राजस्थान विभिन्न जातियों, धर्मों एवं संस्कृतियों का संगम और रंगों का सांगीतिक तीर्थस्थल है। यहाँ के शहर अपने वैशिष्ट्य के कारण लोकप्रिय है, अपनी बसावट, दुर्गो एवं शैली के लिये जगत विख्यात है। जैसा कि सर्वविदित है कि राजस्थान के लोक वाद्य रावण हत्था, मंजीरा, नगाड़े, तीनताश, लोकगीत भोपाओं द्वारा फड बाँचने की परम्परा, पाबूजी के फड, लोक संगीत के सन्दर्भ में विवेचन दिया गया है, ये विश्व भर में प्रसिद्ध है।

राजस्थान के संगीत ग्रन्थों के इतिहास में 17वीं शदी के प्रारम्भ में बीकानेर शासक अनूपसिंह के आश्रय में भाव भट्‌ट ने 'अनूपसंगीत विलास', अनूपसंगीत रत्नाकर

आदि अनेक ग्रन्थों की रचना कर नाया कीर्तिमान स्थापित किया। गायन के क्षेत्र में ध्रुपद का डागर घराना, जयपुर का ख्याल घराना, पखावज का जयपुर नाथद्वारा घराना, नृत्य का जयपुर घराना आदि कलाकारों की भारतीय संगीत नृत्य कला को महत्वपूर्ण देन रही है।

शताब्दियों के विविध सामाजिक उत्थान–पतन के उपरान्त आज भी हमारी पावन संगीत कला अपने मूल रूप से जुड़ी है। इसका सम्पूर्ण श्रेय हमारे उन संगीत साध ाकों को जाता है, जिन्होंने अपनी निरन्तर कला तपस्या एवं त्याग भावना द्वारा अने. कानेक कष्टों को सहन करके इसकों हमारे लिये विरासत स्वरूप सुरक्षित रख लिया है। इन्हीं संगीत साधकों की श्रेणी में कई संगीतकार ऐसे भी है, जो प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी जिन्होंने समय–समय पर अपनी प्रतिभा सृजनात्मक क्षमता, कठोर संगीत साध ाना, निष्ठा एवं लगन से इसे समृद्धशाली बनाया। इसमें डॉ. अजीत जैन, डॉ. नासिर मोहम्मद मदनी, डॉ. अकबर खान, मांगीलाल खोइवाल जैसे प्रज्ञाचक्षुओं ने अपनी साध ाना के प्रकाश से संगीत को आगे बढ़ाया और अपनी लगन से साथ ही मध्यकालीन आक्रामकों की विशेषता में सामंजस्य की भावना से इसे इस प्रकार प्रभावित किया कि यहाँ एक समन्वयक संस्कृति का उदय हो।

राजस्थान बहुत सौभाग्यशाली रहा है कि यहाँ की सभ्यता और संस्कृति के बल पर संगीत को आश्रय मिला और राजस्थान के कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन कर इसे आगे बढ़ाया। कलाकारों में प्रज्ञाचक्षुओं का योगदान भी सम्मिलित है। समाज के इस वर्ग ने अपनी साधना और कला के बल पर संगीत को आगे बढ़ाया और खुद आगे बढ़े। कठोर संगीत साधना और अपनी मेहनत के बल पर आज उन्होंने वो नाम कमाया है जो साधारण व्यक्ति के लिये सहज नहीं। संगीत के प्रति निष्ठा व समर्पण से ही प्रज्ञाचक्षुओं ने संगीत के विकास में अपना विशिष्ट योगदान दिया है और आज भी दे रहें है। शारीरिक रूप से अंशतः असमर्थ होते हुए भी अपनी निष्ठा, मेहनत, लगन व साहस के बल पर ये सदैव अपने पथ पर अग्रसर हैं। प्रज्ञाचक्षुओं में साहस और हिम्मत की कमी नहीं है, वो जो भी करते है उस पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित करते है।

संगीत के क्षेत्र में प्रज्ञाचक्षु आज से ही नहीं वरन् कई वर्षो पूर्व से अपना नाम रोशन कर रहे है। इनका जीवन सहज न होकर संघर्षपूर्ण होता है, किन्तु फिर भी इन लोगों ने संगीत के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किये है। उदाहरण के लिए डॉ. अजीत जैन ने अपनी एक संस्था 'अनुराग संगीत संस्था' की स्थापना की। लगभग 15000 विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा देकर एक कीर्तिमान स्थापित

किया है। इनकी संस्था में आने वाले दृष्टिहीन और विकलांग विद्यार्थियों को शिक्षा निःशुल्क है। उदाहरण के लिए श्री मोहन माथुर, विजय कुमार और दीपक कुमार के कार्य सराहनीय है।

राजस्थान के प्रमुख अंध शिक्षण संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें मरूधर अंध विद्यालय, एलकेसी जगदम्बा अंध विद्यालय, प्रज्ञाचक्षु शिक्षण संस्थान, रा. जकीय नेत्रहीन कल्याण संघ और अनुराग संगीत संस्थान का योगदान उत्तम रहा है। इस संगीत संस्थानों ने प्रज्ञाचक्षुओं को संगीत का शिक्षण देकर उन्हें संगीत के क्षेत्र में आगे लाने का कार्य कुशलतापूर्वक किया है और वर्तमान में भी कर रहे है।

प्रज्ञाचक्षुओं का सामाजिक जीवन समस्याओं से घिरा रहता है। उनकों पारिवारिक, सामाजिक अलगाव का शिकार होना पड़ता है। वह परिवार का एक बोझ समझे जाते है। ऐसे में उनके शिक्षण, रोजगार और विवाह में भी समस्याऐं आती है। वह अपने दैनिक कार्यों के लिये भी दूसरों पर निर्भर रहते है। संगीत शिक्षण में प्रज्ञाचक्षुओं को शिक्षण संस्थानों में प्रवेश को लेकर समस्याऐ आती है। उन्हें संगीत शिक्षा देने वाले शिक्षकों की कमी, शिक्षकों की सृजनशीलता में कमी और सरकार द्वारा उचित सहायता न मिल पाना भी प्रज्ञाचक्षुओं की प्रमुख समस्याऐं है। प्रज्ञाचक्षु संगीतकारों को कक्षा में बैठने नहीं दिया जाता, क्योंकि वो देख नहीं सकते व शिक्षक उन पर ध्यान भी नहीं देते। ये समस्याऐं प्रज्ञाचक्षुओं के विकास में बाधक है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के विजन 2020 के अनुसार अंधता की समस्या का निवारण केवल अधिक राजनीतिक प्रतिबद्धता, पेशेवर प्रतिबद्धता, उच्च गुणवत्तायुक्त

सोनू शर्मा
शोधछात्रा, संगीत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग का संगीत के क्षेत्र में योगदान

संसार में आदि काल से मनुष्य ने अपने को उन्नत बनाने के लिए प्रयत्न प्र. ारम्भ कर दिए थे, जो अनवरत रूप से आज भी गतिशील है। प्रयत्नों के प्रत्यावर्तन में मनुष्य ने आनंद का अन्वेषण किया जिसकी अपेक्षा सदा रही और रहेगी। मानव सभ्यता ने जब विकास करना शुरू किया तभी उनके हाथ काव्य और कला जैसे आनन्ददायक स्वर्ण कलश हाथ लगे। मनुष्य ने इनको सहृदय अपनाया और आत्मीय आनन्द हेतु इसे सदैव अपने मन में रखा।

साधना कला की हो अथवा साहित्य की, कभी–कभी पूरा जीवन साधना में निकल जाता है, तब कहीं जाकर सिद्धि प्राप्त होती है। डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग ऐसे विरल साधक है, जिन्होंने कला और साहित्य दोनों विद्याओं में सिद्धि प्राप्त की है। इसके पीछे उनका परिश्रम, पारिवारिक संस्कारों, सामाजिक परिवेश, गुणीजनों के सत्संग, जन्मजात प्रतिभा या कर्म–क्षेत्र की कठोर साधना हो सकते है। परन्तु आज पूरे देश में उनकी पहचान अप्रतिम संगीतविद् तथा अद्वितीय साहित्यविद् के रूप में हो चुकी है। इन्होनें अपने जीवन के विगत पाँच दशक कला और साहित्य को समर्पित किए है। डॉ० गर्ग द्वारा कठिन संगीत साधना की गई इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं है। इन्हें अपने जीवन काल में अनेक महान संगीतज्ञों से संगीत की शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होंने यद्यपि सभी वाद्यों की शिक्षा ग्रहण की है। परन्तु सितार वाद्य इनका सर्वप्रिय वाद्य रहा। इन्होंने तबला, बाँसुरी, जलतरंग, हारमोनियम आदि वाद्यों की शिक्षा प्राप्त की है। इनके शिक्षकों एंव गुरूओं में श्री डी० आर० ऋषि (वाइलिन), पं० शशिमोहन भटट्, पं० रविशंकर, श्रीमती अन्नपूर्णा देवी (सितार), आचार्य सुधाकर (नृत्य), पं० निरंजन प्रसाद कौशल (गायन), उ० हलीम जाफर खाँ (सितार) आदि है।[1] इन समस्त महान संगीत शास्त्रीयों के अतिरिक्त भी डॉ० गर्ग को अनेक संगीतज्ञों से संगीत संबधी महत्वपूर्ण बातें सीखने को मिली। उनमें से सुप्रसिद्ध वाग्गेयकार आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति भी है जो कि हाथरस आते रहते थे।' इनके अतिरिक्त उ० हाफिज अली खाँ, श्री कृष्णराव पंडित, राजा भैया पुंछवाले आदि

से इन्हें संगीत संबंधी बारीकियां सीखने को मिली। इन्होंने पं० बिरजू महाराज एंव आहमद जान थिरकवा के साथ तबला पर संगत भी की। इसी प्रकार डॉ० गर्ग की प्रतिभा और लगन को देखकर ही ऐसे संगीतकारों ने अपने घराने की विशिष्ट साध ना से इन्हें अवगत कराया।

डॉ० गर्ग ने देश–विदेश में अनेकानेक कार्यक्रम किये। सितार का पहला कार्यक्रम श्रीनगर रेडियों स्टेशन से हुआ। इसके पश्चात् इनके संगीत कार्यक्रमों का सिलसिला बढ़ता ही रहा और इन्होंने उत्तर भारत के अतिरिक्त पूरे दक्षिण भारत की यात्राएँ की और इसके दौरान उन्हें विभिन्न संगीत शास्त्रीयों एवं संगीत शिरोमणियों के साथ मंच साझा करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। विदेशों में हौंगकौंग, सिंगापुर, कनाडा, अमरीका, थाईलैंण्ड और जापान आदि देशों में भी कार्यक्रम किए।' डॉ० गर्ग बहुप्रतिभा के ध नी है, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। इन्होंने शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ फिल्मी संगीत और फिल्म जगत में भी सराहनीय कार्य किये हैं। सन् 1984 ई० में रिलीज ब्रजभाषा – फीचर फिल्म ' जमुना किनारे ' का न केवल इन्होंने निर्माण किया बल्कि उसके निर्देशक एवं संगीत – निर्देशक भी ये स्वंय ही रहे। इन्होंने संगीत निर्देशक आर० सी० बोडाल, मुहम्मद रफी (गायक), जी० एन० जोशी (एच० एम० वी० मुम्बई के संगीत रिकार्डिंग–मैनेजर), श्रीमती लता मंगेशकर जैसे विश्व विख्यात संगीतविद्ों के साथ भी काम किया।[2]

जीवन में एक उम्र तक आकर इन्होंने अपना क्षेत्र कला–प्रदर्शन के स्थान पर लेखन–कार्य को ही अपना साध्य बना लिया। उन्होंने जहाँ 'हमारे संगीत–रत्न,'[3] 'राग–विशारद,'[4] 'संगीत ताल–परिचय,' 'कथक नृत्य,'[5] 'भारत के लोकनृत्य,'[6] भरतनाट्यम,'[7] ''आवाज सुरीली कैसे करे,' 'नाट्यशास्त्र,' 'संगीतरत्नाकर,' 'अभिनयदर्पण,' और ''गीतगो. विन्द,' जैसी पुस्तकों का लेखन एवं अनुवाद कर संगीत–साहित्य की सेवा की है', इसके अतिरिक्त डॉ० गर्ग का एक सम्पादक के रूप में भी योगदान अवर्णनीय है। ' भातखण्डे संगीत–शास्त्र' (चार भागों में)[8] 'क्रमिक पुस्तक–मालिका' (छः भागों में) एवं 'संगीत–विशारद' जैसे अनेकानेक ग्रथों का सम्पादन कर उन्होंने संगीत–साहित्य के प्रचार–प्रसार में महानीय योगदान किया है। इसी प्रकार 'संगीत' मासिक पत्रिका, 'फिल्म संगीत (मासिक/त्रैमासिक) आदि पत्रिकाओं का संपादन कार्य भी इन्होंने किया है एवं अभी भी कर रहे है। डॉ० गर्ग ने लगभग 150 पुस्तकों के लेखन संपादन में अपना योगदान दिया है जो कि अविस्मरणीय है।[9]

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण गर्ग एक उत्कृष्ट संगीत निर्देशक भी रह चुके है। इन्होने फिल्म संगीत निर्देशक के रूप में जो धुनें निर्मित की है, वे सभी वर्षो तक जनमानस में लोकप्रिय रही और लोगो की जुबान पर रही। उनके द्वारा निर्मित देवी माँ का

भजन पूरे ब्रज की महिलाओं द्वारा वर्षो तक गाया गया। अतः इससे ये सिद्ध होता है कि डॉ॰ गर्ग शास्त्रीय ही नही अपितु भक्ति संगीत एवं लोक संगीत में भी अत्यधि ाक रूचि रखते है।[10]

डॉ॰ गर्ग एक उत्कृष्ट संगीतज्ञ, लेखक एवं संपादक ही नहीं वरन् वो एक अच्छे शिक्षक भी है, उनके शिष्यों में जानी–मानी गजल–गायिका पीनाज मसानी, नर्गिस की भतीजी रिहाना, जाने–माने सारंगी–वादक पं॰ रामनारायण के पुत्र व सुप्रसिद्ध ब्रजनारायण और दीर्घकालीन शिष्यों में रीवाँ की महारानी प्रवीण कुमारी और उडीसा (खरिआर) की महारानी राजश्री–देवी आदि है।[11] इसके अतिरिक्त इन्होने संगीत के क्षेत्र में अन्य सेवाएं भी प्रदान की और इसके अन्तर्गत इन्हे आकाशवाणी (दिल्ली) के ऑडिशन–बोर्ड तथा एस॰एन॰डी॰टी॰ यूनिवर्सिटी, मुम्बई में बोर्ड ऑफ स्टडीज के सदस्य का पद भी प्राप्त हुआ।

यही नही संगीत–नाटक अकादमी, नई दिल्ली, सुरसिंगार–संसद मुम्बई, एशियन आर्टस एण्ड कल्चर सेण्टर मुम्बई, इंडियन ऐसोसिएशन ऑफ म्यूजिक कोलकाता, ऑल इण्डिया रेडियो और रेडियो सीलोन आदि के परामर्शदाता भी रहे। वर्तमान में भी ये काका हाथरसी पुरस्कार ट्रस्ट, हाथरस के मैनेजिंग ट्रस्टी, एवं संगीत कार्यालय, हाथरस के मैनेजिंग पार्टनर के रूप में अपना योगदान दे रहे है।[12]

डॉ॰ गर्ग के संगीत क्षेत्र में अमुल्य योगदान के कारण ही उन्हें कई पुरस्कार एवं सम्मानादि से सम्मानित किया गया अतः इनकी उपलब्धियाँ इस प्रकार है–(1) अग्रकुल भूषण, हाथरस (उत्तर प्रदेश), (2) बृहस्पति संगीत–सेवा सम्मान चंडीगढ, (3) 'कांस्य पदक' टोकियो म्यूजिक यूनिवर्सिटी जापान।[13] (4) शरनरानी फाउण्डेशन, नई दिल्ली द्वारा 'श्री सम्मान' (1996), (5) म्यूजिक फोरम, मुम्बई द्वारा 'मीडिया अवार्ड' (1996), (6) स्वर साधना समिति, मुम्बई द्वारा 'स्वरसाधना –रत्न अवार्ड' (1998), (7) काउन्सिल फॉर नेशनल डिवलपमैंट, नई दिल्ली द्वारा 'भारत–विकास ऐक्सीलैंट अवार्ड' (1998), (8) अमरिका की संस्थान द्वारा 'मैन ऑफ द ईयर सम्मान' (2000), (9) भ. ारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, सांस्कृतिक विभाग द्वारा 'फैलोशिप' (सन् 1998–99),(10) नागरिक परिषद, देहरादून (उत्तराखण्ड) द्वारा 'दून रत्न' (2004), आदि।[14]

संदर्भ ग्रंथ

1. 'संगीत' (मासिक) नवम्बर, 2007, पृ.सं. 71
2. वही, पृ.सं. 72,75,81
3. 'हमारे संगीत रत्न गर्ग डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, पृ.सं. 1, सं॰ 1978, प्रं॰ संगीत कार्यालय

हाथरस, मु॰संगीत प्रेस हाथरस

4. राग विशारद (भाग–1), गर्ग डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, पृ.सं. 1, प्र॰सं॰ 2008, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, मुद्रक जय लक्ष्मी–प्रिंटिंग प्रेस (दिल्ली)
5. कथक नृत्य, गर्ग डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, पृ.सं. 1, सं॰ मार्च, 2010, प्र॰ संगीत कार्यालय हाथरस, मु॰ हरीओम प्रेस (दिल्ली)
6. भारत के लोकनृत्य, गर्ग डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, पृ॰सं॰ 1, सं॰ सितम्बर, 1961, प्र॰ संगीत कार्यालय हाथरस, मु॰ संगीत प्रेस हाथरस
7. भरतनाट्यम (भाग–1) गर्ग डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, सं॰ जून 2008, पृ॰सं॰ 1, प्र॰ संगीत कार्यालय हाथरस
8. भातखण्डे संगीत शास्त्र (भाग–3), श्री विष्णुनारायण भातखण्डे, संपादक डॉ॰ लक्ष्मीनारायण गर्ग,पृ॰सं॰ 1, प्र॰ संगीत कार्यालय हाथरस॰ मु॰ संगीत प्रेस हाथरस
9. Dr. Laxminarayan Garg Interviewed at dehradun on 29 July 2013 - sangeet
10. ´संगीत (मासिक) नवम्बर 2007 पृ॰सं॰ (19)
11. वही पृ॰सं॰ 73
12. वही पृ॰सं॰ 81
13. संगीतकारों की हस्तरेखाएँ, गर्ग डॉ॰ लक्ष्मीनारायण, सं॰ अप्रैल 2011, प्र॰ संगीत कार्यालय

डॉ. वीणा जैन (शोध निर्देशिका)
सीमा सैनी (शोधार्थी)
संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

संगीत जगत का अनूठा व्यक्तित्व पं. पन्नालाल घोष

सत् चित् आनंद की अनुभूति में लीन व्यक्ति ही आदर्श स्थापित करता हैं, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। महान बनने के लिए जीवन को आदर्श बनाना होगा, सच्ची साधना के लिए चित्त का विकार मुक्त होना जरुरी है य अंतर की शुद्धि कर्मठ जीवन तथा चिरंतर में पूर्ण निष्ठा से न्दर्य का बोध होता है, आनंद की उपलब्धि होती है। इस आदर्श का पालन करने वाले मनस्वी कलाकार थे– पं. पन्नालाल घोष, जिन्होंने एक चिरस्मरणीय कीर्तिमान स्थापित किया।

वर्तमान काल में बाँसुरी के स्तर को बढ़ाने का श्री स्व. पन्नालाल घोष को प्राप्त होता है। इनका जन्म बंगलादेश के बरिसाल नामक जिले में 31 जुलाई सन 1911 ई. को हुआ। पिता का नाम स्व. अक्षय कुमार घोष था जो स्वयं संगीत के बड़े प्रेमी थे और सितार बजाते थे। घर के संगीतमय वातावरण ने आपके सभी भाइयों में संगीत के प्रति रूचि उत्पन्न कर दी। आपके एक भाई श्री ज्ञान घोष ने तबला सीखा और दो अन्य भाइयों श्री बिदुल घोष और श्री सुनील घोष ने गायन सीखा। ज्ञान घोष बंगाल के अच्छे तबलिये गिने जाते रहे। पन्नालाल के बाबा हरकुमार घोष एक अच्छे ध्रुवपद–गायक और पखावज–वादक थे। चाचा गोपाल कुमार ख्याल तथा टप्पा के गायक थे।कहा जाता है कि पन्ना बाबू की माता और दादी को सैकड़ो परम्परागत ध्रुवपद और बंगाली टप्पा याद थे। इस प्रकार आपको संगीत–संस्कार विरासत में मिले। आपके मामा मनरंजन मजुमदार भी संगीतकार थे।

चौदह वर्ष की अवस्था से स्वर्गीय पन्नालाल घोष ने बाँसुरी बजाना शुरू किया। सुरीले होने के कारण शीघ्र ही अच्छा बजाने लगे। मन में सीखने की प्रबल इच्छा थी, अतरू जिससे भी जो कुछ मिल जाता, सहर्ष ग्रहण करते।

1932 से ही श्री पन्नालाल का यह प्रयास था कि वंशी का आकार किस प्रकार बड़ा किया जाए। इसी समय एक वृद्ध मुसलमान वंशीवाले के साथ उनका परिचय हुआ। वह वंशी अच्छी बजाता था। वंशी बजाकर घूम–घूमकर वंशी बेचता था। यही थी उसकी स्वाधीन जीविका। उसकी वंशी सुनकर श्री पन्नालाल एक दिन उसे घर ले आये। उससे वंशी सुनी व खरीदी भी। वह वृद्ध आता जाता रहता था एवं सदाबन्धु प्रिय श्री पन्नालाल ने उसे अपना बंधु बना लिया, और एक दिन अपने मन की बात उसके सामने प्रकट कर दी – बड़ी वंशी किस प्रकार बजायी जाये। वृद्ध स्वयं वंशी बजाता था,अतरू उपयुक्त गुणी का साथ पाकर उत्साहित हुआ, इसके पश्चात दोनों ने परीक्षण–निरीक्षण कर धीरे– धीरे वंशी का आकार बढाने का प्रयास किया। इस प्रकार एक–एक मात्रा आकार बड़ा करने का कार्य शुरू हुआ। 'सी'–'सी–शार्प' 'बी'–'बी–लेट' एवं 'ए' तक पहुँच गये। उसके पश्चात और बड़ा बांस नही मिला। बाध्य होकर और अधिक बड़े साइज की वंशी तैयार करने का काम बंद कर दिया गया। नये–नये प्रकार की वंशी जिस प्रकार होती गयी, बजाने की पद्धति भी उसी प्रकार परिवर्तित होती गयी। किस प्रकार के 'सरगम' किस प्रकार की वंशी पर अच्छे खिलेंगे तथा किस प्रकार की पद्वति से बजाने से गले के काम के समतुल्य सुनायी देंगे, इसे लेकर श्री पन्नालाल परीक्षण करते रहे। उस समय व रागदारी को लेकर उतना चिंतन नहीं करते थे, जितना कि 'सरगम' को लेकर। पूरे समय तक वे विविध ढंग से अंगुली संचालन का अभ्यास करते थे; ट्राम–बस में यात्रा के समय भी एक हाथ पर अंगुली रखकर कोमल स्वर निकालने की चेष्टा करते थे। इस चेष्टा ने उनके अभ्यास का ही रूप ले लिया था। वंशी को छोड़कर अन्य किसी विषय पर उनका चिंतन था ही नहीं। ध्यान–ज्ञान में वंशी, गायन में वंशी, स्वप्न में, जागरण में वंशी – यही थी श्री पन्नालाल की साधना।

सन 1934 ई. में इन्होने कलकत्ता के 'न्यू थिएटर्स' नामक फिल्म स्टूडियो में वंशी–वादक के रूप में नौकरी प्राप्त कर अपने सांगीतिक जीवन को प्रारम्भ किया। इसी अवधि में उनका संपर्क सुप्रसिद्ध रचनाकार एवं संगीत–निर्देशक राय चन्द्र बोराल तथा हारमोनियमवादक खुशी मुहम्मद से हुआ, जिनसे उन्हें संगीत का उत्तम निर्देशन प्राप्त होता रहा। उनसे आपने बाँसुरी सीखना शुरू किया। उनसे एक वर्ष तक ही सीख पाये थे कि आपको सन 1937 में सरई कला नृत्य मण्डली के साथ विदेश जाने का अवसर प्राप्त हुआ। एक ओर इस अवसर को आप छोड़ना नहीं चाहते

थे और दूसरी ओर मास्टर खुशी अहमद का शिष्यत्व बनायें रखना चाहते थे, किन्तु दोनों का संयोग असम्भव था। विदेश जाने की इच्छा बलवती हुई और नृत्य मण्डली के साथ आप चल दिए। वहाँ से केवल 6 माह के बाद आप लौट आये, किन्तु इसके पूर्व मास्टर खुशी अहमद की मृत्यु हो चुकी थी। निराश होकर दूसरे गुरु की खोज करने लगे। आपने गिरजा शंकर चक्रवर्ती से करीब दो वर्षों तक संगीत–शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद आप सन 1940 में बम्बई चले गये। वहाँ कई–चलचित्रों के संगीत–निर्देशन का कार्य मिला। जिसे आपने सफलतापूर्वक निभाया। संगीत निर्देशन से आपके संगीत अभ्यास में बाधा पड़ने लगी अतरू आपने संगीत निर्देशन का कार्य छोड़ दिया और संगीत साधना में लग गये।

पं. पन्नालाल घोष की आन्तरिक कामना सन 1947 में पूरी हुई, जब संगीत के प्रवाद पुरुष उस्ताद अलाउद्दीन खां ने उन्हें अपने शिष्य रूप में ग्रहण किया, इसके पूर्व पं. पन्नालाल बाँसुरी–वादक व संगीत निर्देशक के रूप में प्रतिष्ठापित हो चुके थे एवं उन्होंने कई सफल प्रयोग भी किये थे। संत पुरुष उस्ताद अलाउद्दीन खां ने पन्नालाल को कहा था, "तुम भारतरत्न हो सब कुछ जानते हो"। पन्नाबाबु का उत्तर था "सच्चा गुरु चाहता हूँ, मैं गुरु से सीखूँगा और यमन मेरा पहला राग होगा।"

उन्होंने दीपावली, जयंत चन्द्रमौली तथा नूपुर ध्वनि आदि नवीन रागों का भी सृजन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'कलिगंविजय' और 'ऋतुराज' आदि शीर्षक वाघवृन्द की मधुर रचना का निर्माण किया, जिसका प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रायरू होता है। उन्होंने देश के सभी प्रमुख संगीत–समारोहों एवं आकाशवाण ाी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों आदि में अपने वंशीवादन का सुमधुर कार्यक्रम प्रस्तुत कर श्रोताओ के हत् तंत्री को झं.त किया। उन्होंने अंजन बसंत तथा बीसवीं सदी नामक हिंदी चलचित्रों में कुशल संगीत–निर्देशन का भी कार्य किया। बड़ी वंशी पर वादन संगीत–समारोहों में वंशी का स्वतंत्र वादन, वंशी पर गायकी शैली के वादन के प्रचार आदि का श्रेय उन्हें ही प्राप्त है। उनके प्रमुख शिष्यों में देवेन्द्र मुर्देश्वर, वी.जी. कर्नाड आदि के नाम उल्लेखनीय है। वे आड़ी वंशी का ही वादन करते थे तथा आकाशवाण ाी के 'ए' वर्ग के कलाकार थे।

आपके अनेक छोटे–बड़े रिकॉर्ड बन चुके है। आकाशवाणी के प्रत्येक केंद्र से तथा कई आकाशवाणी के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अंतर्गत अपना बाँसुरी वादन प्रस्तुत कर चुके है। आप ख्याल अंग से बाँसुरी बजाते थे और बजाते समय तीन बाँसुरियों का प्रयोग करते थे। अति मन्द्र सप्तक के लिए आप मोटी बांसुरी रखते थे, मन्द्र और मध्य सप्तकों के लिये साधारण ओर तार–अतितार सप्तकों के लिए

सबसे पतली और छोटी बाँसुरी रखते थे। बजाते समय इन तीनों का उपयोग इस सुन्दरता और शीघ्रता से करते थे कि श्रोताओं को तनिक भी आभास नहीं हो पाता था कि आप बाँसुरी बदल रहे है। बाँसुरी पर विलंबित लय की आलाप, मंथर गति में स्वरों की बढ़त और अति मन्द्र सप्तक में स्वरों का लगाव आपके ही मान का कार्य था। तबले के साथ लड़ंत–भिडंत आपको पसंद नहीं थी। विलंबित और मध्य लय की रचना के बाद आप बहुधा ठुमरी बजाते थे।

20 अप्रेल 1960 को प्रातरू रक्तावरोध से दिल्ली में आपका आकस्मिक देहांत हो जाने के कारण संगीत संसार शोक सागर में डूब गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- भारतीय संगीत के प्रमुख स्तम्भ–संपादक, रविन्द्र नाथ बहोरे
- हमारे प्रिय संगीतज्ञ, प्रो. हरिशचन्द्र श्रीवास्तव
- स्वर वाद्यों के ठुमरी और धुन, डॉ सीमा रानी वालिया
- भारत के संगीतकार, डॉ लक्ष्मी नारायण गर्ग
- भारतीय संगीत के सुषिर बाद्यों का इतिहास, डॉ. राधेश्याम जायसवाल

डॉ. ज्योति सारस्वत
प्रवक्ता संगीत
बीकानेर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

Hkkjrh; lkxhfrd ok|k e & ljkn

संगीत और वाद्यों का परस्पर वही संबंध है जो स्वर और ताल का है। संगीत पद में गीत के साथ सम्मिलित रूप में वाद्य की स्थापना और संगीत के मूल नाद में स्वर के साथ ताल एकीकरण संगीत में वाद्य के महत्व को स्वतः ही सुप्रतिष्ठित करते हैं। सांगीतिक जगत् में वाद्यों का अति आवश्यक व महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत अंतर्मन की नैसर्गिक भावना है तथा वाद्य–यंत्र उसके बाह्य प्रकटीकरण का सुंदर माध्यम है। दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। संगीत वाद्य–यंत्र रूपी स्थूल शरीर की आत्मा है जिसके अभाव में वाद्य–यंत्र निष्क्रिय हो जाते हैं। गायन अथवा नृत्य की परिपूर्ण तथा सरस अभिव्यक्ति के लिए वाद्यों की संगति अत्यंत आवश्यक है। वाद्यों द्वारा स्वर तथा लयबद्ध रूप में उत्पन्न संगीत वादन कहलाता है। आचार्य शारंगदेव वादन के महत्व को बताते हुए कहते हैं– ''नृत्यवाद्यानुगंपावतंगीता '' इस श्लोक में वादन को गायन के अधीन और नृत्य को वादन के अधीन बताया है।[1]

भारतीय शास्त्रों में प्राचीनकाल से सर्वसम्मति द्वारा वाद्यों के चार प्रमुख वर्ग माने गए हैं जो क्रमशः तत् ,अवनद्ध ,घन व सुषिर हैं जिनका प्रथमोल्लेख भरतकृत नाट्यशास्त्र में मिलता है। सर्वमान्य रूप से महर्षि भरत का चतुर्विध–वाद्य–वर्गीकरण ही स्वीकृत एवं प्रचलित है।[2]

इन्हीं चतुर्विध–वाद्यों को कई अन्य संगीतकारों व शास्त्रकारों ने कालान्तर में अपने–अपने अनुसार वर्गीकृत किया। वर्तमान में संगीतज्ञ संगीत वाद्यों को तत्–वितत्, सुषिर अवनद्ध व घन के अन्तर्गत वर्गीकृत करते हैं। आधुनिक काल तक आते–आते तत् – वितत् वाद्यों को आसानी से बैठकर बजाने के कारण दो वर्गों में विभाजित कर दिया।

जो इस प्रकार है–

तत् वाद्य– वे तन्त्री वाद्य जिन्हें मिजराब, जवा आदि के प्रहार से बजाये जाते हैं, जैसै– सितार, सरोद, वीणा, आदि।

वितत् वाद्य– इसके अन्तर्गत वे तंत्रीवाद्य आते हैं जिनका वादन गज या कमानी

के घर्षण से किया जाता है जैसै–सारंगी, बेला, दिलरूबा आदि।[3]

l jkn & Lon kh ;k fon kh ok|

भारतीय सांगीतिक वाद्यों में – सरोद का महत्वपूर्ण स्थान है। सरोद भारतीय वाद्यों की श्रेणी में तत् अथवा तंत्री वाद्यों के अन्तर्गत आता है। सरोद की विशेषता यह है कि इसके तारों की गूँज में मंत्रमुग्ध करने वाला संगीत उपजता है।

l jkn dh mRifr%&

सरोद वाद्य की उत्पति और विकास के विषय में अनेक मत प्राप्त होते है। डॉ. दिनेश चन्द्र गुप्त के अनुसार "सरोद" शब्द की उत्पति अरबी के 'शहरूद' अथवा 'सारोद' शब्द से हुई है जिसका अर्थ संगीत है। कालान्तर में यही 'शहरूद' नाम भारत में सरोद नाम से ग्रहण किया गया।[4]

एक अन्य मान्यता के अनुसार अरबी भाषा के 'शा–रूद' शब्द की उत्पति हुई। अनुमानित दो–तीन शताब्दी पूर्व सरोद अरब व अफगानिस्तान के मध्य से भारत में आया था। काबुल व काश्मीर में भी यह वाद्य बहुत प्रचलित है। रबाब के साथ इसकी आकृति–गत सदृश्य है। कुछ लोग इसे प्राचीन भारतीय शारदीय वीणा का विवर्तित रूप कहते हैं। चूँकि मध्य कालीन संगीत ग्रन्थों में इस नाम से कोई वाद्य उपलब्ध नहीं होता अतएव इसके वर्तमान रूप को रबाब का ही परिवर्तित रूप मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। यह साज़ दो शैलियों में बजाया जाता है–

1 jckc dh Úkyh **2 Loj J xkj dh Úkyh**[5]

उस्ताद हाफिज अली खाँ के अनुसार सरोद अफगानिस्तान का साज़ है और काबुल से यह हिन्दुस्तान लाया गया। काबुल में इसे लोग 'रबाब' कहते हैं। आजकल (उर्दू पत्रिका अगस्त 1956 के पष्ठ संख्या 12 में भी लेख है कि काबुली रबाब को वर्तमान स्वरूप देने का कार्य बंगस गुलाम बंदगी खाँ जो कि उ0 हाफिज अली खाँ के पितामह थे, का है।[6]

पंडिता विजया लक्ष्मी ने अपने लेख में लिखा है कि 'कच्छपी वीणा को यदि हम सरोद मान लें तो कोई आपत्ति नहीं होगी। भरतकष्त नाट्यशास्त्र में दिया गया कच्छपी वीणा का वर्णन सरोद से मिलता–जुलता है। अतः इतिहास को देखकर यही जानकारी प्राप्त होती है कि यह वाद्य ईरान से भारत लाया गया है।[7]

प्रसिद्ध सरोद वादक सखावत हुसैन खाँ के अनुसार–हमारे पूर्वज ही सरोद के जन्मदाता थे। उन्ही लोगों ने अफगानी वाद्य यंत्र रबाब में इच्छानुसार परिवर्तन तथा संशोधन करके सरोद तैयार किया गया था। "Inventing sarod a cultural history" पुस्तक के लेखक एड्रियन मैकनिल के अनुसार यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा

सकता कि सरोद का आविष्कार सबसे पहले किसने किया और यह अस्तित्व में कब से आया किन्तु हम इस वाद्य की उत्पति के संदर्भ में कल्पित रूप से अनुमान लगा सकते है। सरोद के सबसे पहले आविष्कारक देशान्तर में बसने वाले बंगश जाति के पठानों की दूसरी या तीसरी पीढ़ी थी जो पेशे से संगीतज्ञ थे।[8]

कुछ विद्वानों का मत है कि सरोद एक भारतीय वाद्य है। डॉ0 लालमणी मिश्र के अनुसार सरोद वाद्य के विषय में निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध होते हैं–

रबाब, सुरसिंगार तथ सरोद आदि का रूप प्राचीन चित्रा वीणा में देखा जा सकता है। अनेक संगीत विशेषतज्ञों का मानना है। कि सरोद जो शहरूद से ग्रहण किया गया है एक शब्द नहीं अपितु दो शब्दों का मिश्रण है– शाह़+रूद का अर्थ यहाँ रूद्रवीणा से जोडा़ गया है और इस प्रकार शाहरूद का अर्थ रूद्रवीणा बताया गया है।[9]

शरमा–ए–इशरत उर्दू ग्रन्थ में इसे 'बरबत' नाम से संबोधित किया गया है। अतः इस वाद्य के सम्बन्ध में एक निर्विवाद तथ्य यह है कि 15वीं शताब्दी से सरोद का नाम जब से प्राप्त होता है, इसका सम्बन्ध मुसलमान वादकों से ही दिखाई पड़ता है। किसी मध्यकालीन संस्कृत ग्रंथकार ने इस वाद्य का उल्लेख नहीं किया है।[10]

श्रीमती शरणरानी के अनुसार – सरोद एक विशुद्ध भारतीय वाद्य माना गया है। उनके द्वारा लिखित पुस्तक "The Divine Sarod" में कहा गया है कि सरोद पुरातन समय की चित्रा वीणा तथा कच्छपी वीणा का स्वरूप है क्योंकि इस वाद्य के तुम्बे पर जानवर की खाल चढ़ी होती थी। पुरानी गुफाओं, मन्दिरों व चित्रों में चित्रित सरोद से मिलने–जुलते सांगीतिक वाद्य जो हमें भारत के अनेक क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं वे लगभग 200ई पू के है। उनमें इस वाद्य को लेकर बैठने,बचाने तथा पकडने का जो तरीका चित्रित किया गया है वह आधुनिक समय के वाद्य सरोद से बहुत मिलता–जुलता है।[11]

Jherh “kj.kjkuh d vuqlkj –

“Sarod is called “Swarod” in Bengal, which is another variant of Sarod. Both these words are derived from the Sanskrit word “Svarodaya” meaning the rising of svaras.”[12]

इसी प्रकार सरोद की ही उत्पति के विषय में vetn vyh [kk कहते हैं –

“Both the terms Sitar and Sarod are derived from Persian words – Sehtaar, a triple stringed instrument : and Sarod, that is melody music tune.[13]

विदूषी शरणरानी ने अपनी पुस्तक "The Divine Sarod" में सरोद की उत्पति व विकास पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार – सरोद एक ऐसा तत् वाद्य है जिसे भारत में बहुत पसंद जाता है।

भारत के अनेक भागों में जहाँ प्राचीन गुफा एंव मन्दिर है वहाँ सरोद की आकषति के वाद्य देखे जा सकते है। यहाँ तक कि प्राचीन समय में जो संगीतकार अपनी गोद में एक वाद्य लेकर बैठे हुए इन चित्रों में नजर आते हैं। वादन का और वाद्य को लेकर बैठने का तरीका हमें आज कई कलाकारों के सरोद बजाने को देखकर समान लगाता है।

श्रीमती शरणरानी द्वारा रचित यह पुस्तक दूसरी शता.ई.पू. से छठी शता.ई.पू. के इतिहास पर प्रकाश डालती है तथा इसमें बताई गई सरोद से संबंधित चित्रकारियाँ 475 ए.डी. से 15 वी. शता. के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं।[14]

Lkjn dh lajpuk&

सर्वविदित है कि वर्तमान समय में तंत्र वाद्यों में सरोद एक विशेष स्थान रखता है। उसी प्रकार सरोद की संरचना भी अपने आप में एक विशेष महत्व रखती है। सरोद को बनावट के आधार पर तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है–

1. सरोद का ऊपरी मुख्य भाग– जहाँ खूँटियाँ लगाई जाती है।

2. सरोद का मध्य भाग जहाँ इस्पात का पत्र लगाया जाता है और जहाँ से वादन क्रिया की जाती है।

3. सरोद का निचला भाग जहाँ तुम्बे पर चमड़ा मढ़ा होता है और उसके ऊपर घुड़च लगाई जाती है।

सरोद वाद्य के निर्माण में तुन, सागवान या टीक की लकडी का प्रयोग किया जाता है।ऊपरी भाग जहाँ खूंटियाँ लगाई जाती हैं उसे छोड़ कर बाकी का एक अखण्डित लकड़ी में गढ़ा जाता है।

सरोद के ऊपरी भाग में जहाँ खूंटियाँ लगाई जाती हैं उसकी लम्बाई एक फुट से अधिक तथा सात इंच व्यास की होती है। यह अन्दर से ठोस होती है। इस स्थान पर दोनों पार्श्वों में तीन – 2 खूंटियाँ लगाई जाती है। खूंटियों की लम्बाई लगभग पाँच इंच होती है। जो सरोद आठ खूंटियों के होते हैं उनमें दोनों पार्श्वों में चार–चार खूंटियाँ लगाई जाती हैं। इसमें चार बाज के तथा चार छेड़ के तार होते हैं। इसी स्थान पर पीछे की ओर मुँह किया हुआ छोटा तुम्बा लगा होता है जो कि एल्यूमिनियम स्टील या पीतल का बना होता है।

सरोद के मध्य भाग पर जहाँ पर वादन क्रिया होती है इस्पात का पत्र चढ़ाया

जाता है। इसकी लम्बाई 15–16 इंच होती है। इसकी मेरू के पास की चौड़ाई ढाई से पौने तीन इंच तक होती है जो तुम्बे की ओर बढ़ती जाती है। जहाँ इस्पात का पत्र समाप्त होता है वहाँ उसकी चौड़ाई साढ़े पाँच इंच तक होती है। यह भाग अन्दर से खोखला होता है। यह साढ़े सात इंच तक गहरा होता है।

मध्य क्षेत्र में मेरू से लगभग चार तथा साढ़े सात इंच की दूरी पर दो खूँटियाँ लगाई जाती हैं जिनमें चिकारी के तार लगाये जाते हैं। इन दोनों खूँटियों से एक इंच घुड़च की ओर एक दाढ़ लगाई जाती हैं जिसके ऊपर चिकांरी के दोनों तार रखे जाते हैं। इस से थोड़ा–सा आगे तरबों की खूँटियाँ ऊपर–नीचे की दो पँक्तियों में लगाई जाती हैं। इनकी संख्या 11–15 तक होती है।

सरोद का निचला भाग तुम्बा जहाँ चमड़ा मढ़ा होता है लगभग नौ इंच परिधि का होता है। इस चमड़े पर लंगोट से मेरू की ओर तीन इंच की दूरी पर घोड़ी रखी जाती है जो हड्डी की बनी होती है। बाज के तार, छेड़ के तार व चिकारी के तार इसके ऊपर से होकर गुजरते हैं। तरबों के तार इसमें नीचे बने हुए छिद्रों से होकर निकलते हैं। लँगोट के लिए चार इंच चौड़ा लोहे का कड़ा पत्र लगा होता है। सरोद में मुख्य तारों के लिए तारगहन लगा होता है जो मेरू का कार्य करता है। सरोद मुख्यत; आठ खूँटियों के बनते हैं परन्तु आजकल छह खूँटियों के सरोद भी प्रचार में हैं।[15]

अतः इतिहास को देखकर यही जानकारी प्राप्त होती है कि यह वाद्य ईरान से भारत लाया गया है किन्तु श्रीमती शरणरानी द्वारा उनकी पुस्तक "The Divine Sarod" में दी गई जानकारी के अनुसार सरोद पूर्णतया भारतीय वाद्य प्रतीत होता है।

l nHk xUFk

1 MkW- jtuh ik.Ms;& ^^t;iqj dh fp=dyk esa laxhr ok|**& i`-la- 87 o 98

2 vfurk tutkuh & ^^Hkkjrh; laxhr esa flU/kq lekt dk ;ksxnku** & i`- la- 367

3 ogh & i`-la- 371

4 Lkaxhr ekfld if=dk & gkFkjl & ^^ Qjojh & 2003] i`-la- 17 ^^

5 डॉ. अमलदाश शर्मा – ''संगीतायन''– पृ.सं. 157

6 MkW- laxhrk flag & ^^mRrj Hkkjrh; laxhr esa rU=h ok|ksa dk LFkku ,oa mi;ksfxrk** & i`-la- 9

7 "kkUruq "kekZ & ^^ izfrf'Br flrkj ,oa ljksn okndksa dh lk/kuk ,oa la?k'kZ**& i`-la- 9

प्रेरणा चौधरी
शोधार्थी

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

अज्ञान प्रतीाकत्मकता से रुपांकित प्रतीकात्मकता की ओर

मनुष्य अपने को व्यक्त करना चाहता है, यह उसकी जन्मजात प्रवृत्ति है। दूसरी प्रवृत्ति जो मनुष्य में प्रारम्भ से ही है, वह है अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक वस्तुओं का निर्माण करना मनुष्य के लिए आदिकाल में वस्तु का चित्र बना देना इतना आसान न रहा होगा कि इच्छित वस्तु का पूर्ण चित्र बनाया जा सके इतना अभ्यास, इतनी शक्ति, इतना ज्ञान, मनुष्य में नही रहा होगा, परन्तु इसके प्रयत्न मनुष्य ने करना आरम्भ किया वस्तु को पूर्ण रू‍प में यथार्थता के साथ व्यक्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु इतनी शक्ति न होने के कारण वह केवल वस्तुओ का प्रतीकात्मक रूप ही बना सका होगा ऐसे प्रतीक जिनको देखकर इच्छित वस्तु का बोध हो सके। धीरे–धीरे इन प्रतीको को मनुष्य ने स्मरण कर लिया और ये अभिव्यक्ति में प्रयुक्त होने लगे इसी को आज हम चित्रकला में प्रतीकात्मता कहते है।

सहज रूप में प्रतीक शब्द की व्याख्या करना कठिन है। इस शब्द के प्रयोग से हमारा जो तात्पर्य है चित्रकला में निहित प्रतीक। अंग्रेजी भाषा में एक धब्द हैसिम्बल। किन्तु जितने अर्थो में इस शब्द का प्रयोग हुआ है उससे तो सिममबल के अनेक अर्थ हो सकते है, जैसे संकेत लक्षण, चिन्ह तथा मुद्रा इत्यादि। चिन्ह के लिए अंगेजी भाषा में साइन शब्द है। वैज्ञानिक दृष्टि से उस भाषा में सिम्बल के अलावा दूसरा शब्द नही है।

भारतीय कला में प्रतीकों को वर्णमाला कहा गया है। भरतीय कला में प्रतीको का प्रयोग समझने के लिए प्रतीको में अन्तर्निहित अभिप्रायो को समझना होगा भारतीय कला धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक संस्कृति मेा समाहार है। जीवन के गम्भीर एवं गूढ़ तात्विक विवेचन की प्रतीकात्मक व्याख्या हमें भरतीय कला में सर्वत्र दिखाई देती है। भारतीय कला धार्मिक, दार्शनिक एवं गूढ़ तात्विक विवेचन की प्रतीकात्मक व्याख्या हमें भारतीय कला मे सर्वत्र दिखाई देती है। भारतीय कला–लोक को परलोक से मिलाने वाला सेतु है। यह भौतिक और आध्यात्मिक जगत का मिलन–बिन्दु है। कला को प्रायः धर्म की अनुगामिनी कहा गया है। किसी भी देश की धार्मिक मान्यताएँ

असके पौराणिक देवी–देवता, उसके आचार–विचार एव्र असकी नीति परम्पराएँ वहाँ की कला में अभिव्यक्ति पाती है। धर्म दर्शन और संस्कृति कला में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते है और इस कार्य के लिए भारतीय कला ने कतिपय कला प्रतीकों का सहारा लिया। ये प्रतीक ही भारतीय कला की विभिन्न विचारों एवं परम्पराओं, मान्यताओं, विश्वासो को प्रतीको का सहारा लेकर अपनी जीवन्तता को बनाए हुए है प्राचीन समय में जिन प्रतीकों की सृष्टि की गई थी वे अधिक दुरूह (कठिन) नही थे। उनकी व्यवस्था करने वाला साहित्य भी उपलब्ध था। प्रतीकों की रचना केवल संसार में देखे गये रूपों के आधार पर ही नही होती। कला में अनेक लौकिक–अलौकिक, वास्तविक–काल्पनिक वस्तुओं के संयोग से भी प्रतीको की सृष्टि होती है। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ प्रतीक का भी विकास यथार्थ से लेकर काल्पनिक दिशा में हुआ। आदि मनुष्य प्राकृतिक रूपों के आधार पर प्रतीक रचना करता था। धीरे–धीरे विकास के साथ–साथ विकसित मानव ने प्रकृतिक रूपों के समन्वय के साथ प्रतीक रूपों की संरचना की और अब आधुनिक मानव अति सूक्ष्म प्रतीको की रचना में संलग्न है। पूर्व से लेकर अब तक कला के ऐसे अनगिनत प्रतीक मानव ने समाज को दिये हैं। कला में सामाजिक परम्परायें, रीति–रिवाज, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि का प्रभाव प्रतीकों में दिखाई पड़ता है। प्राचीन काल में तो ये प्रभाव इतने घुले मिले रहे कि इनको इनसे पृथक करना संभव न था। अनेक मांगलिक प्रतीको का सृजन भी केवल इसीलिए हुआ क्योंकि मानव को अपने में विश्वास व शक्ति का संचार करने के लिए कुछ तत्वों की आवश्यकता थी जो प्रत्यक्ष रूप में उसके साथ न होकर अप्रत्यक्ष रूप में उसके साथ थे। हजनकों साकार करने के लिए मानव ने प्रतीकों का सहारा लिया। मन में भय के कारण एक अदर्शय शक्ति पर मानव को विश्वास बढ़ता गया और इसी विश्वास ने प्रतीको का रूप ले लिया देवी एवं मानवेतर शक्तियों के लिए भी कतिपय प्रतीकों की अवधारणा की गई थी जैसे शिवलिंग, सूर्य, चन्द्र, गरूड़ आदि। धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित प्रतीकों में सतूप, नागराज आदि के साथ प्रभागण्डल, पद चिन्ह और पंख भी सम्मिलित हैं। इसी तरह राजा के दरबार में राजस्व के परिचायक प्रतीकों के अन्तर्गत चक्रवर्तिन, सिंघासन, चागर, छत्र पाद पीठ आदि की गणना है।

भारत में प्रतीकों को स्थान केवल कला में ही नहीं, लोगों के बेहतर जीवन के लिए भी आवश्यक होता गया। अपने अच्छे जीवन की मंगल कामना करने में प्रतीको का सहारा लेने में कुछ मांगलिक प्रतीक बहुत लोकप्रिय होते हैं जैसे– अष्टमंगल (प्रतीकों का समूह) बहुत लोकप्रिय हुआ थे। भारतीय कला प्रतीक कला के विविध माध्यमों से रूपाचित हुए है। अतः प्रतीक अज्ञान प्रतीकात्मता से रूपांकित प्रतीकात्मकता की ओर बढ़े।

आधुनिक युग में कला और साहित्य दोनो ही क्षेत्रों में प्रतिको का प्रयोग बढ़ गया है। कलाकार अपनी अनुभूति को नये–नये प्रतीकों में व्यक्त करने लगे है। प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है जहाँ सामान्य भाषा पद्धति अनुभूतियों को व्यक्त करने में असमर्थ रहती है वहाँ प्रतीक विधि की आवश्यकता होती है गम्भीर विषय को शब्दों के बिना प्रतीकों से सरलता से समझा जाता है। प्रागैतिहासिक युग से लेकर वर्तमान काल तक कलाकार इतने अनगिनत प्रतीको को मानव समाज को देते आयें हैयदि इन सबो संगहित कर लिया जाए तो ईश्वर द्वारा रचित सृष्टि के करीब पहुँचती प्रतीको की सृष्टि दिखाई देगी। मानव सहायता के विकास के साथ–साथ प्रतीकों का विकास यर्थाथ से काल्पनिक से सूक्ष्म आकृतियों की दिशा में हुआ है। आदिम मनुष्य प्राकृतिक रूपों के आधार पर प्रतीक रचना करता हैं। अधिक विकसित मनुष्य ने समस्त प्राकृतिक रूपों के समन्वय से अनेक काल्पनिक प्रतीकों की सृष्टि की और अब आधुनिक मानव सूक्ष्म प्रतीकों की रचना में संलग्न है। अतः आधुनिक कला प्रतीकता की अन्तिम सीमा तक पहुँच गयी है। धर्म, दर्शन तथा मनोविज्ञान ने भी इसमें बहुत सहायता की है कला में सामाजिक परम्पराएँ, रीति–विाज, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक अवस्थाएँ आदि अपना प्रभाव दिखाती है कलात्मक प्रतीकों का विचार करते समय स्वप्न प्रतीको और जीवन में दिखाई देने वाले रूप भी अध्ययन का विषय बन जाते हैं। विचार और विश्वास से भी प्रतीक को अन्तर है। प्रतीक में एक प्रकार का आध्यात्मिक महत्व होता है। इससे उसमें रहस्यात्मकता आ जाती है। प्राचीन सभ्यताओं में जिस पौराणिक जगत की कल्पना की गयी थी उसमें निहित प्रतीक आकृतियों को परवर्ती युगों ने विश्वासपूर्ण ग्रहण किया है इससे भौतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों के समन्वय में सहायता मिली है।

प्रतीक की परिभाषा जानने हेतु उसकी प्रकृति को भी जानना होगा। डॉ0 आनन्द कुमार स्वामी ने हिन्दू दर्शन की भावना के अनुसार कहा है कि विम्बों के रूप में विचार करना ही प्रतीकवाद है। ैलउइवसपउ पे जीम ंतज वि जीपदापदह पद पउ. ंहमेण्ष आधुनिक युग में मनुष्य ने इस गुण को खो दिया है।

दाएल के अनुसार प्रतीक अभिव्यक्ति को संक्षिप्त और मूर्त साधन है। यह सघन एवं गुणीभूत होता है और बाह्यमुखी एवं परिमाणात्मक प्रवृत्ति का विरोधी है। उनका यह विचार गेध्े से बहुत मिलता है। गेध्े ने कहा था कि प्रतीक में सामान्य को विशेष के द्वारा व्यक्त किया जाता है, न स्वप्न की भाँति, न छाया की भाँति, बल्कि सजीव एवं क्षणिक रूप के माध्यम से मार्क मौनियेर ने कहा प्रतीक हमारे समक्ष उस जगत के रहस्यों को खोल देते हैं जिनका वर्णन वाणी की पहुँच के बाहन है। आकार संगठन की दृष्टि से वे कालातीत है अतः सार्वकालिक रूप में बोधगम्य है शेष बातों से वे सांस्कृतिक एवं व्यक्तिगत विशेषताओं से प्रभावित होते हैं। प्रतीक में सृष्ठा और सृष्टि का सम्बन्ध भी स्पष्ट रहता है। वास्तव में प्रतीक सृष्टि अपने

Mk0 JhÑ'.k ;kno
प्राचार्य, श्रीबालाजी कॉलेज, पचेरी बड़ी
(झुन्झुनू) राज.

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

gekjh fojklr gekjh dLc*&ftyk >qU>quw¼jkt0½

eMkok&विश्व प्रसिद्व हेरीटेज कस्बे की पर्यटन व्यवसाय में अलग ही पहचान कायम है अक्टूबर माह से ही यहॉ ऐतिहासिक पर्यटन स्थलो पर सैलानीयो का तांता लगना शुरु हो जाता है सीजन के चलते इटालियन, फ्रांस, जर्मन के पर्यटक विशेष रुप से आते है। अक्टूबर माह से पर्यटन व्यवसाय में गति आ जाती है। सेठो ने अपने पारिवारिक आवास, जनकल्याण एवं विभिन्न प्रकार की इमारतों, हवेलियों, बावडिया, कुएं, धर्मशालाए, मंदिरों, और छतरियों का निर्माण करवाय और उन्हे भिति चित्रो से सुसज्जित कराया। ब्रिटिश विषय एवं नवीन आविष्कार तथा ट्रेन, टेलिफोन, कार व साईकिल इत्यादि भी उनके भिति चित्रों की विषय वस्तु बने शेखावटी के भिति चित्र एक पूरे युग की जीवन शैली एवं संस्कृति को प्रदर्शित करतें है। गुलाबराय लड़िया हवेली जो शायद शेखावटी की सुदंरतम हवेलीयों में से एक है। साथ ही अखराम की हवेली, मोहनलाल सर्राफ हवेली, हनुमानप्रसाद गोयनका हवेली, केदारमल लडिया हवेली, स्नेहराम लडिया हवेली, बंशीधर नेवटिया हवेली, फूलचदं चौखानी हवेली, नंदलाल मुरमुरिया हवेली, हरलाल का कुआं, सोथलिया गेट, रघुनाथ मंदिर, ठाकुर जी मंदिर, हरलाल का छत्री, गोयनका छत्री, अलखियान जोहड, माजीसा का कुआ पर्यटको के लिए कस्बे के प्रसिद्व व दर्शनीय स्थल है। यहॉ पर विदेशी सैलानी बार बार आये इसके लिए ट्रेवल मार्ट विकसित करने की आवश्यकता है। मंडावा में पर्यटन को बढावा देने व हवेलियो को सरंक्षण देने में ठा0 केसरी सिंह का योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता। इस बारे में ठा0 केसरी सिंह का कहना है कि रीपीट टूरीज्म के मामले में मंडावा अन्य कई स्थानो से काफी पिछडा हुआ है इसके लिए पर्यटन स्थलो के संरक्षण और पर्यटको को आधारभुत सुविधाये उपलब्ध कराने के साथ साथ रीपीट टूरीज्म को बढावा देने के लिए प्रशासन के साथ स्थानीय नागरिको को भी अपना सहयोग करना होगा। शेखावटी में ब्राडग्रेज का जाल बिछे, पुस्तको व फिल्म के जरीये पर्यटन स्थलो बढावा मिले एवे पर्यटन मेलो का आयोजन हो।

eylhlj – गढ के निर्माण का कार्य सन 1762 से शुरु होकर सन 1809 में

पूर्ण हुआ था। मलसीसर गॉव को बसाने एवं इस विशाल गढ का निर्माण करवाने का श्रेय झुन्झुनू के ठा0 जोरावर सिंह के पुत्र ठा0 महासिंह को है। इस चार मजिंला गढ में विशाल प्रांगण हवादार कमरो के बीच में बडे बडे चोक, हवादार झरोखे, भंडार ग्रह तथा बाहरी परिधि में सैनिको के लिए बैरीक बने हुए है। गढ की सीढीयाँ अपने आप में अनुठी है। वे एकदम सीधी एवं क्रमिक चढाव वाली है, जिन पर घोडे भी आराम से चढ उतर सकते थे। गढ की सुरक्षा हेतु चारो ओर गहरी पानी की नहर बनी हुई है, ताकि अ्रकमण कारी आसानी से कीले को भेदने में असफल रहे। गढ में प्रवेश करते ही एक छोटा सा देवालय बना हुआ है यह स्थान एक सच्चे वीर झूझार सिंह की स्मृति में बना हुआ है। ऐसा सुनने में आता है कि गढ की रक्षार्थ उसने अपने सिर से गढ के मुख्य द्वार को तोड दिया था। अपने आस पास के ठिकानो में मलसीसर ठिकाने की जबरदस्त धाक हुआ करती थी, क्योकि मलसीसर ठिकाने के पास स्वंय की तोपें थी। सेठलाल चन्द जोहडा–मलसीसर के उतर में हैलिना कौशिक के पास स्थित है। इस जोहड का निर्माण सेठ प्रेमसुख दास ने बकों की किसी व्यग्यात्मक बात को लेकर अपने ही दम पर बिना किसी चदें व सहायता के करवाया था। इस तालाब का जो प्रधान कारीगर था अजीम खां क्यामखानी एक छतरी पर अपने जीवन की सर्व श्रेष्ठ कलाकृति बनाते समय इतना मग्न हो गया की उपर से गिर कर उसकी मौत हो गई। इसके बाद जूही से कारीगर बुलाया गया, जोकि दिन में वेसी ही कलाकृति तैयार कराने की कोशिश करता लेकिन रात्रि के समय वह अपने आप गिर जाती। कई दिनों तक सही क्रम चलता रहा एक दिन मिस्त्री को एक आवाज सुनाई दी कि तुम मेरी होड मत कर इस कलाकृति की आकृति बदल दे तो ही यह कार्य पूरा हो सकता है। जूहि के कारीगर ने पूर्व कारीगर जो गिर कर मर गया था कि सलाह को माना व कार्य को अजांम दिया तब से लेकर आज तक जब–जब इस समाधी वाले स्थान से कोई छेडछाड करता है पीर बाबा उसको अवश्य ही चेता देता है। आज इस पीर की खूब मान्यता है। लोग गुरुवार व शुक्रवार के दिन प्रसाद चढा कर मन्नते मांगते है। उसके अलावा गांव में बकों का जोहडा, राजका जोहडा भी बने हुये है। हवेलिया– वैसे तो मलसीसर में हवेलिया बहुत है लेकिन सेठ मोतीलाल झुन्झुनू वाले की हवेली, सेठ लालचन्द की हवेली, सेठ प्रहलादराय बंका की हवेली, सेठ गोविंद राम बंका की हवेली प्रमुख है यह हवेलिया आज भी उस बात की साक्षी है कि गॉव की माटी में कितने ही सेठ साहुकारो को पैदा किया है। जो आज विदेशो में भी अपने नाम का डंका बजा रहे है एवं मलसीसर गॉव का नाम रोशन कर रहे है। इसके अलावा गॉव में बंको का कुआ, सरावगियो का कुंआ, जोखीराम का कुंआ, नयडा कुंआ आदि ऐतीहासिक धरोहर आज भी अपनी उपस्थिति का अहसास करवा रही है।

ljtx<–क्षेत्र की वास्तुकला का बेजोड नमूना कस्बे का एकमात्र जल संग्रहण स्थल पक्का तालाब सार–संभाल के अभाव और अनदेखी के चलते अनुपयोगी होता जा रहा है। इस ऐतिहासिक धरोहर का संरक्षण किया जाए तो क्षेत्रवासीयों के लिए जल का यह अच्छा स्रोत तथा रमणीक स्थल हो सकता है।

वर्ष 1946 में निर्मित यह तालाब कभी लबालब भरा रहता था। धार्मिक अनुष्ठान, पशुधन के लिए पानी तथा आमजन की जरुरतों के दृष्टिगत इस बनवाया गया। तालाब का पक्का गउघाट आज भी दर्शनीय है। वहां सैकडो गायें एवं पशु पानी पी सकते है। इसके ठीक उपर जनाना घाट बना है। अन्य तीनों घाटों पर पुरुषों के स्नान की व्यवस्था है। तालाब का नक्शा नाप जोख कर बनवाया गया। तालाब पूरा समतल है और कहीं से भी देखने पर पूरी जलराशि दिखती है। उपर की सीढियों के बाद चारों तरफ काफी चौडा चौपडा है। चौपडे के बाद क्रमबद्व सीढियां बनी है, जो तालाब की नाभि तक है। तालाब का निर्माण गोरानाथ सम्प्रदाय के साधु सादीनाथ के तपस्याकाल में हुआ। खुद उन्ही की देखरेख में खुदाई के बाद इसे पक्का कर दिया गया। उस समय वास्तुकला और तालाब निर्माण की दक्षता का आलम है कि सिवाय उपरी चौपडे में मरम्मत के अभाव में हो रहे रिसाव के अलावा आज भी यह भीतर से एकदम सुदष्ढ है। प्रतिवर्ष कालबेलिये और बिणजोर अपने पशुधन भेडो को लेकर यहां अस्थायी डेरा डालते है। आश्रम के वर्तमान गाडीदार योगी शंभूनाथ ने बताया कि तालाब निर्माण के समय पर ही तालाब के चारों और चार छतरियों का निर्माण अभी तक नही हो पाया है। तालाब के समीप ही पुराना शिव मंदिर है। यह गुरु गोरखनाथ सम्प्रदाय के आचार्यो का गददी स्थल है तथा आसपास ही मंहत रुडनाथ जी का पुराना आश्रम है। तालाब बीड के मध्य बना हुआ है। पूर्व में इस बीड में कई तरह के वष्क्ष थे। यहां कई औषधियां भी सुलभ थी, परंतु पेडों के अंधाधुंध काटे जाने से यह स्थली अब औषधीय वनस्पतियों से विहीन हो चुकी है।

[krMh– खेतसिंह के नाम से बसे झुन्झुनू के खेतडी कस्बे की देशभर में स्वामी विवेकानंद की करम स्थली और कॉपर प्रोजेक्ट के कारण अलग पहचान है। नगर में जहां–तहां पुरा सम्पदा तो बिखरी पडी ही है, साथ ही वास्तुकला के लिहाज से भी क्षेत्र का खासा महत्व है। वैसे खेतडी को मदिंरो का नगर कहॉ जाए तो भी अतिश्योक्ति नहीं होगी।यहॉ कभी 150 से अधिक मदिंर थे। सदियो पुराने इन मदिंरो की कलाकषतिया आज भी मुहं बोल रही है। यहॉ के राजघरानो का इतिहास भी काफी प्रसिद्व रहा है। राजा अभयसिंह, बख्तावर सिंह, शिवसिंह, फतेहसिंह, अजितसिंह, जयसिंह, अमरसिंह एवं सरदार सिंह खेतडी के प्रमुख शासको में रहे है।

1- ty lkr& सरकारी सर्वेक्षण के मुताबीक यहां 419 कुंए होने के उल्लेख हैं। आज मरम्मत के अभाव में अधिकांश अनपायोगी सिद्व हो रहे है। यहां नानुवाली व चेजारों वाली नाम की दो बावडियां है। यहां 1870 में सेठ पन्नालाल शाह द्वारा बनवाया हुआ तालाब है।

2- fojklr– राजघरानो के समय बने सुखमहल, रानीवास, अमरहाल खेतडी की धरोहर है। इसी क्षेत्र में रामकष्ण मिशन का केद्र है जहां स्वामी विवेकानंद ने अध्यात्म का अध्ययन प्रारंभ किया था। स्वामी विवेकानंद की कर्मस्थली के रुप में क्षेत्र की दुनिया भर में अगल पहचान है।

3- efnj– नृसिंह मदिर चार सौ साल पुराना है। इसकी निर्माण शैली काफी आकर्षक है। इसके साथ ही कस्बे में चूडावत जी, राणावत जी, भाटियाणी,, बराही

सेठ लालचन्द्र का जौहड़, सूरजगढ़

श्रीमति सविता शर्मा
शोधार्थी
पेसेफिक यूनिवर्सिटी
उदयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

तिलोनिया : लोक कला को संरक्षित एवं प्रोत्साहित रखने का एक सफल प्रयास

हमारा भारत सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक रहा है, और हमेशा से ही कला की भव्यता के लिये जाना जाता है। आज भी भारत सभ्यता और संस्कृति में किसी भी देश से पीछे नही है और राजस्थानी लोक कला ने भारत एवं विदेशों में अपनी छाप छोड़ी है। वर्तमान में कला के क्षेत्र में हमारी कुछ कलाएं विलुप्त होती जा रही है, जिनमें से लोक कला एक ऐसी कला है जो हमारी संस्कृति की धरोहर है। कला की शुरुआत गांवो और आदिवासी क्षेत्रों से प्रारम्भ हुई। आजकल धीरे–धीरे आदिवासी क्षेत्र व गाँव कम होते हुए समाप्त होने की कगार पर है। इसलिए कि हमारी लोक कला विलुप्त होती जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले समय में नई पीढ़ी गाँवो व आदिवासी क्षेत्रो से अनभिज्ञय रह जाएगी और इस कला के बारे में भी नही जान पाएगी। यह अत्यन्त चिन्ता का विषय है। इसलिए हमें इस कला को प्रोत्साहन देकर अपनी धरोहर को संजोए रखने का प्रयास करना है।

राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में कला का अग्रगण्य स्थान है। प्रत्येक क्षेत्र ने अपनी–अपनी शैली भी बना ली है। किशनगढ़ शैली, उदयपुर शैली, नाथद्वार चित्र कला, बाड़मेर की चित्रकला, जयपुरी प्रिंट, सांगानेरी प्रिंट सब ने अपनी कला पर अपने क्षेत्रो के नाम की छांप छोड़ी है। जो कि देश ही में ही नही अन्यथा विदेशो में भी अत्यन्त लोक प्रिय हैं।

अजमेर व जयपुर के बीच में एक गाँव है तिलोनिया जो कि अपनी एक एन. जी.ओ.संस्था के रुप में जाना जाता है। यह संस्था लोक कला को संरक्षित तो करती ही है। अपितु वहाँ के आस पास के लोगो को उद्योग धन्धे भी देती है। जिस से उन गरीब गांव वालो की रोजी रोटी चलती है। यहाँ की संस्था में आ कर गाँव की महिलाए व पुरुष यहाँ से कच्चा माल ले जाते हैं। व उसे अपनी लोक कला में ढाल कर पुनः उन्हे लौटाते हैं। जिससे उन्हे उन की मजदूरी मिलती है व यहाँ की संस्था उस कला को बिना नफा नुकसान उसे बेचती है। यह क्षेत्र पर्यटको का मुख्य आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ के आस–पास के गाँव जैसे तिलोनिया से 9

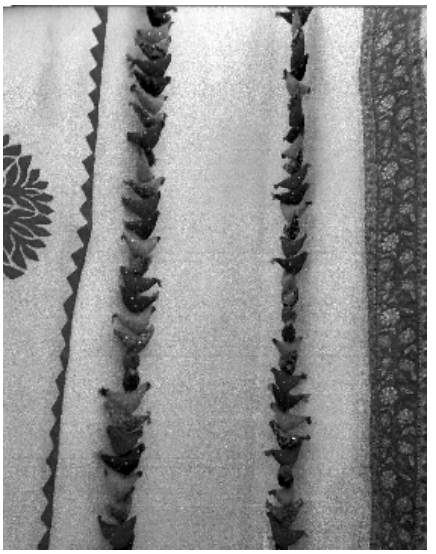
(चित्र–1)

किलोमीटर की दूरी पर एक गाँव है जिस का नाम नलू है। यहाँ से आकर महिलाएं कपड़ा व धागे, सितारे मोती, गोटा, तार आदि ले जाती है व उन से अपने घरो में बैठ कर बन्धनवार, व चिड़ियाँ वाली लटकने बनाती है, (देखें चित्र–1)। कुछ महिलाए पैच वर्क का कार्य करने में बहुत ही निपुण होती है, जो कि बहुत ही सुन्दरता से कुशन कवर, चादरे, दिवारों पर टाँगने की चादरे बहुत ही निपुणता से बनाती है, जिनकी शोभा देखते ही बनती है। यहाँ से कुछ दूरी पर जहाँ पर कागज की लुगदी से काम किया जाता है। कागज के छोटे–छोटे टुकड़े कर के इन्हे दो तीन दिन के लिए बड़े बर्तन में भिगों दिया जाता है। फिर इसको बहुत महीन पीसा जाता है। व इसमें मुलतानी मिट्टी को बहुत महीन कुट कर मिला कर गूथा जाता है। फिर इस में अरारोड़ का घोल मिलाकर मिश्रण तैयार किया जाता है व आटे कि तरह मांडा जाता है। फिर इससे विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जैसे नेम प्लेट, मूर्ति, पेन स्टैन्ड व विभिन्न प्रकार के बर्तन आदि बनाए जाते है। इस मिश्रण में एक गेरु जैसा कलर भी मिलाया जाता है जिससे ये गेरुए रंग के होते है। इस पर आंक के पेड़ से इकट्ठा किये गए दूध जिसका कि गाड़ा घोल बना कर पन्नी की कीप में भरा जाता है, आज कल इस की जगह फेवीकॉल भी इस्तामल में लिया जाने लगा है। कीप से इन बर्तनों व वस्तुओं पर लोक चित्रकारी की जाती है। जो कि बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। और इनकी कीमत भी बहुत अधिक नहीं होती। गाँवो के घरों में आज भी इस प्रकार से बनाये बर्तन सूखा अनाज व सब्जी आदि रखने में प्रयोग में आते हैं। परन्तु शहरो में यह सजावट की वस्तु जैसे श्रंगार दान, पेन स्टैण्ड, नेम प्लेट, मूर्तियाँ, पेन्टिंग, गुलदस्ते आदि के रुप में प्रयोग में लाये जाने लगे है।

लकड़ी का कार्यः–

यहाँ के आस पास के गाँवो में जो लोग लकड़ी का सामान बनाते है। वह न तो बहुत ही बड़ा फर्नीचर का रुप लिये हुए है। और न ही बाड़मेर की लकडी की कलात्मकता को लिये हुए है और न ही ये भव्य एवं महंगे होते है बल्कि ये छोट–छोटे खिलौनो व वस्तुओं का रुप लिये हुए होते हैं, जो बहुत मन मोहक होते

है, जैसे छोटी छोटी बैल गाडीयां, बच्चों के खिलौने, स्लेटें, झूलें, पेन स्टेन्ड, हवाई जाहज आदि। पेड़ की टहनीयों एवं पतली लकड़ियों से बनाए गए सरीसर्प जैस साँप, गो, गिरगिट, अजगर आदि। दीवार पर चाबी के छल्ले टांगने का स्टेन्ट जैसी वस्तु को सुसज्जित किया जाता है। इनको तरह–तरह के आकार व डिजाइनों में काट कर उन पर कलर किया जाता है, व मोती सितारो व उभार द्वारा सजाया जाता है। यह कलात्मक प्रतीत होता है व सुन्दर भी दिखता है। भिन्न प्रकार के आकार में ये दीवार पर टांगने के लिए बनाए जाते है जो कई वस्तुए लटकाने के उपयोग में लाए जाते है।

लकडी के पेन स्टैण्ड, ज्वैलरी बोक्स, बैंगल स्टैन्ट, छोटे, डिब्बे जो चोकोर होते है। आदि मन को प्रसन्न करते है।

चमड़े का कार्यः–

यहाँ पर चमड़े पर बहुत ही कलात्मक प्रकार से कार्य किया जाता है। चमड़े की शुद्धता तो है ही उस पर सुन्दर प्रकार से रंग बिरंगी कसीदाकारी हमें उन्हे खरीदने पर विवश कर देती है। हर प्रकार के पर्स, बैग, छोटे बडे, चौकोर, गोले, लम्बे, आयताकार बहुत प्रकार की आकृतियों में बनाए जाते है। व कुछ पर चमड़े की कटिंग से ही कार्य किया होता है। ये स्वतः कलर के ही होते है। परन्तु जिन पर कसीदा किया हुआ होता है। वह लाल, हरे, पीले, नीले, सफेद, ऊनी धागों, द्व ारा भिन्न प्रकार के डिजाइन व चित्रो के कसीदे किये हुए होते है। यहाँ जूते, व कोल्हापुरी चप्पले भी आकर्षक प्रकार की पाई जाती है एवं बैल्ट व पेन स्टैउ भी चमड़े के कसीदे किये हुए होते है। कुर्सियां व पीड़े जो बैठने के लिए उपयोग में लाये जाते है। ये मजबूत तो होते ही है। साथ–साथ बहुत आकर्षक व कसीदाकारी किये होते है। इन पर निवार की जगह चमडे का प्रयोग किया जाता है। बैठने के लिए छोटी–छोटी टेबल भी कसीदा से तैयार की हुई होती है। विभिन्न आकार बोतलो के कवर भी चमड़े से बनाए जाते है। वे भी कसीदाकारी किये हुए होते है। चमडे के उपर की गई कसीदाकारी में सिर्फ चमड़े, ऊन व धागों का ही प्रयोग होता है। इसमें किसी प्रकार के मोती, कांच या सितारे का इस्तामल नही किया जाता। तिलोनिया की कला हमारी लोक कला को सुरक्षित रखने के लिए हमें बहुत प्रोतसाहित करती है। व हमारे लघु उधोग धंधो को भी प्रोतसाहित करती है।

मांडने का विभिन्न आयामः–

राजस्थान लोक कला में मांडने बहुत प्रचलित, जो कि गाँवो में आज भी तीज त्यौहारो, उत्सव व अन्य पर्वों पर घर आंगनो में उकेरे जाते हैं, परन्तु यहाँ कुछ

अनूठा देखने को मिला, यहाँ की महिलाएं माड़ने में कपड़े, कांच, कागज, कलर आदि का प्रयोग भी करती हैं। जबकि हम यह सब वस्तुऐं सांझी बनाने में प्रयोग में लाते है। इससे यह बात प्रतीत होती है कि कला पर कोई बाध्यता लागू नही होती, गाँवो में गोबर व मिट्टी से दीवार व आंगन को साधारण तरह से लीप कर उस पर गेरु व खडीयाँ से मांडने बनाती हैं पर यहाँ दीवार पर पीला एवं अन्य कोई रंग जैसे सफेद, हरा, लाल एवं नीले रंग का प्रयोग कर मांडने बनाए हुए है। परन्तु इससे उनके मांडनों पर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा। पतले सफेदे या रंगीन कपड़े को टुकड़ों में काटकर चित्र के रुप में चिपकाया जाता है। कपड़े को फूल की आकृति के रुप में एवं स्त्री, पुरुष, पेड़ या जानवर के रुप में भी काटकर चिपका देते है। फिर उस की आउट लाईन या बाउन्ड्री गोल्डन या सिल्वर गोटे को चिपकाकर बना दी जाती है। रंगो से आंख, नाक एवं अन्य अंग बनाए जाते हैं। रंगो से ही उस कपडे पर पशु पक्षी भी उकेरे जाते है व शुशोभित करने हेतु मोती सितारो से सजाया जाता है। यहाँ तक कि त्वचा के रंग के लिए स्कीन कलर का ही प्रयोग किया जाता है एवं अन्य अधिक तर प्राईमेरी कलर प्रयोग में लिए जाते हैं। इसके अलावा इसमें नीला, काला एवं अन्य रंग भी प्रयोग में लाये जाते है। अधिकतर प्रयोग में लाये जाने वाले कपड़े साधारणतः प्लेन न होकर छापेदार व रंगीन छीटदार कपडे का प्रयोग मांडने की आकृति बनाने में एवं मांडने की बाउन्ड्री का डिजाइन बनाने में भी रंगों के स्थान पर कपड़े भी प्रयोग करते हैं। यह बहुत सुन्दर व कलात्मक प्रतीत होते हैं।

ईन्डी व झूमरः–

रंग बिरंगी ऊन से स्त्रियां छूमर बनाती है, जो कि ऊटों के सजाने के काम में आते है। स्त्रियों अपने बालों में भी इन्हें परान्दे व चुट्टीलां के नाम से बांधती थी। परन्तु आजकल ये झूमर दीवारों पर वाल हैंगींग व पर्स में टांगने के काम आते है। पहले औरते कुऐं से पानी भर कर लाती थी तब सर के ऊपर पानी के घड़े के नीचे ईन्डी रखती थी। उस इन्डी को बहुत ही विशेष प्रकार से तैयार किया जाता है। यह ईन्डी एक लकडी का खाली चक्कर (सर्किल) होता है, जिसे कपड़े से लपेट लिया जाता है एवं उसे छोटे शीशे व सितारो से सजाया जाता है। उसके चारो तरफ झालरें शीशे एवं ऊन की बनाकर लगाई जाती है। स्त्रियाँ इनको अपने सर पर रखकर पानी का मटका लेकर आती थी। आज भी गांवों में औरतें इनका प्रयोग करता है।

आज भी ये इन्डीयां हिन्दु प्रथा में कुआ पूजन में स्त्री के सर पर रखी जाती

है। व घरो में सज्जा के काम आती है। इसी प्रकार के छोटे–छोटे छूमर ऊन व धागो द्वारा तैयार किये जाते है। जिनको छतों, दीवारों और द्वार पर टांगा जाता है और सजावट के रूप में उपयोग में लेते हैं। इन में बल्ब लगाने की व्यवस्था भी होती है।

जयपुरी और सांगानेरी प्रिन्ट

यहाँ पर विविध प्रकार के कपडे–चादरें, कुशन कवर, बैग आदि बनाये जाते हैं। जो कि जयपुरी और सांगानेरी प्रिन्ट के होते है ये बहुत ही कलात्मक व सुन्दर प्रतीत होते है। प्रायः ये सूती वस्त्रों को रुप में मिलते है। कुर्ते, कुर्तीयां, साड़ियां, बैग, चुन्नीयाँ अधिक मात्रा में मिल जाती है। यहाँ पर सांगानेर कपडा भेज कर प्रिन्ट करवा कर मंगवाया जाता है, उन सांगानेरी प्रिन्ट के कपड़ों से विभिन्न प्रकार के वस्त्र महिलाओं द्वारा कारखाने में तैयार किया जाता है। बैग इत्यादि तो महिलाए घर में ही तैयार कर देती है।

यहाँ छोटे बैग और कपडे के छोटे पर्स भी देखने व खरीदने को मिलते है। जिन पर कसीदाकारी होती है एवं मोती व सितारो द्वारा सुसजित होते है। बड़े बैग मुख्यतः साधारणतः सांगानेरी प्रिंट के होते है। उन पर कोई कसीदाकारी या कोई मोती, सितारे नही होते।

अधिक तर चादरो और साडियों से ज्यादा सांगानेरी प्रिन्ट के कुर्ते, कुर्तीयां अधिक प्रचलन में है।

जयपुर की पगडियां और लहरिये की साड़ियाँ, रजाईया, चादरे, बन्धेज, आदि जयपुर से ही प्रिन्ट कर के वहाँ भेजी जाती है। ताकि विदेशी निर्यात में सहयोग हो सके। हां सिलाई, बुनाई, कढाई, आदि का कार्य यहाँ की स्त्रियाँ ही करती है। यही कारण है कि इस संस्था का लोक कला को प्रोत्साहन देने का कार्य प्रगति पर है।

लेखक का यह मानना है कि इस प्रकार राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार एवं

डॉ. सदफ सिद्दिकी
9–10, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम रोड
चन्दरवरदाई नगर,
अजमेर–305001

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

सामरिक दृष्टि में भारत चीन सम्बन्ध

भारत और चीन के बीच विवाद की मुख्य रूप से तीन वजह रही है। चीन की पहली चाहत है कि अरूणाचल सीमा के पास सड़क बनाने की इजाजत मिले और लद्दाख में अक्साई चीन। दूसरी चाहत है कि ब्रह्मपुत्र नदी का पानी चीन को मिले और तीसरी सबसे बड़ी चाहत है कि अरूणाचल पर हक मिले। चीन जम्मू–कश्मीर को भारत का हिस्सा मानने से इंकार करता है और इस मुद्दे पर पाकिस्तान का समर्थन करता है।

भारत औीर चीन चुंबी घाटी के इलाके में आमने–सामने हैं, जहाँ भारत–भूटान और चीन तीन देशों की सीमाएं मिलती हैं। डोकलाम पठार चुंबी घाटी का ही हिस्सा है जहाँ भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच तनाव हुआ है। जून की शुरुआत में चीनी वर्करों ने याडोंग से इस इलाके में सड़क को आगे बढ़ाने की कोशिश की, जिसकी वजह से ठीक इसी इलाके में भारतीय जवानों ने उन्हें ऐसा करने से रोका। भूटान सरकार भी डोकलाम इलाके में चीन की मौजूदगी का विरोध कर चुकी है, जो कि जोम्पलरी रिज में मौजूद भूटान सेना के बेस से बेहद करीब है। इस पूरे विवाद से भारत की चिंता इस बात को लेकर है कि उसके उत्तरपूर्व राज्यों को जोड़ने वाली संकरी पट्टी, जिसे चिकन–नेक कहते हैं, चीन की तोपों के निशाने पर आ सकती है।

भारत और चीन के बीच तनाव अपने चरम पर है। 1962 की भारत–चीन लड़ाई के बाद यह पहला मौका है जब सिक्किम से लगी सीमा पर भारत और चीन के बीच गतिरोध ने तूल पकड़ा है। यहां दोनों तरफ सैनिक तैनात हैं। भारत ने डोकलाम में जो सैनिक तैनात किए हैं, वह नॉन काम्बेटिव सैनिक यानि अपनी बंदूक की नाल को जमीन की ओर रखते हैं। डोकलाम सिक्किम की सीमा पर एक इलाका है। जहाँ चीन, भारत और भूटान की सीमा मिलती है और इसी इलाके में चीन को भारत ने सड़क बनाने से रोका है। इसके बाद चीनी सेना ने भारत के दो बंकर नष्ट कर दिए और इस घटना के बाद से तनाव बढ़ता गया। भूटान ने

भारत की मदद से चीन के सामने अपनी चिंता जाहिर की क्योंकि चीन और भूटान के बीच राजनयिक सम्बन्ध नहीं हैं। इस बीच चीन ने भारत से सेना की गतिविधि को लेकर आधिकारिक शिकायत दर्ज कराई और यह भी संदेश दिया कि गतिरोध खत्म होने के बाद ही तीर्थयात्रियों को कैलाश मानसरोवर यात्रा पर जाने के लिए नाथूला पास का रास्ता खोला गया। पूर्व में राजदूत स्तरीय विरोध के बाद अब चीन के विदेश मंत्री ने मुँह खोला।

चीन का आरोप है कि डोकलाम में भारतीय सेनाएं चीनी सरहद में दाखिल हुई। लेकिन तथ्य ये हैं कि 16 जून 2017 को चीनी सेना ने डोकलाम में सड़क बनाने की कोशिश की। भारत के अनुसार भूटानी सेना के गश्ती दल ने उन्हें रोकने की कोशिश की। 20 जून 2017 को भूटान ने चीन से आधिकारिक विरोध दर्ज कराया। भूटान ने फिर कहा– डोकलाम मे सड़क निर्माण समझौते का उल्लंघन। सड़क निर्माण में लगी टीम से यथास्थिति बनाए रखने का आग्रह किया। इस मामले में कूटनीतिक स्तर पर दिल्ली और बीजिंग में बात जारी है।

भारत–चीन युद्ध जो भारत चीन सीमा विवाद के रूप में भी जाना जाता है। चीन और भारत के बीच 20 अक्टूबर से 21 नवम्बर 1962 में हुआ एक युद्ध था। जो दक्षिणी क्सिजिंग, अक्साई चीन, अरूणाचल प्रदेश, दक्षिण तिब्बत, उत्तरपूर्व फ्रंटियर में हुआ था। इस युद्ध में भारत की सैन्य क्षमता 10000 से 12000 थी जबकि चीन की सैन्य क्षमता 80000 थी। इसमें भारत के 1383 की मृत्यु, 1047 घायल, 1696 लापता एवं 3968 बंदी बनाए गए थे जबकि चीन के 722 की मृत्यु एवं 1697 घायल हुए। परिणाम यह हुआ की चीनी सेना की जीत हुई। जिसका असर यह हुआ की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चीन की छवि धूमिल हो गई।

वर्तमान समय में भी आंकड़ों के अनुसार चीन की सैन्य क्षमता भारत से अधिक है। भारत के पास 13.25 लाख सैनिक एवं 21.47 लाख रिजर्व बल है जबकि चीन के पास 23.25 लाख सैनिक एवं 23 लाख रिजर्व बल है। हवाई हथयारों में भी चीन शक्तिशाली प्रतीत होता है।

पाकिस्तान के साथ चीन का संबंध सदैव ही विशिष्ट रहा है और द्विपक्षीय रिश्तों की सामरिक नींव 1950 के उत्तरार्द्ध में ही पड़ गई थी जब चीन और भारत के संबंधों में गिरावट की शुरुआत हुई। परंपरागत पनडुब्बियों से अलग परमाणुशक्ति–चालित पनडुब्बियों की खासियत यह होती है कि वे असीमित दूरी तक बहुत–से काम करती रह सकती हैं, क्योंकि उन्हें बार–बार ईंधन भरने की जरूरत नहीं होती। इसका अर्थ यह हुआ कि टॉरपीडो और क्रूज मिसाइलों से लैस इन पनडुब्बियों को पानी के भीतर ज्यादा समय तक तैनात रखा जा सकता है, जहाँ

इन्हें तलाश कर पाना या इनका सुराग पाना बेहद कठिन होता है। ऐसी सामरिक शक्ति वाली मिसाइलों और पनडुबियों से लगता है भारत के पास शक्ति कम चीने पास अधिक है।

चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग ने पाकिस्तान की अपनी पहली ऐतिहासिक सरक. ारी यात्रा के दौरान विदेश में अब तक के सबसे बड़े निवेश के तहत महत्वाकांक्षी 3,000 किलोमीटर की चीन–पाक आर्थिक गलियारा (सीपीईएसी) का औपचारिक अनावरण किया।

इस रणनीतिक गलियारे को 1979 में बने काराकोरम राजमार्ग के बाद दोनों देशों के बीच सबसे बड़ी संपर्कसूत्र परियोजना माना जा रहा है। इससे चीन का पश्चिम एशिया से तेल के आयात का मार्ग 12,000 किलोमीटर कम हो सकेगा।

दोनों देशों के बीच कुल मिलाकर 51 समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। ये समझौते ढांचागत परियोजनाओं, ऊर्जा उत्पादन, कृषि, शिखा, दूरसंचार और अनुसंध ाान के क्षेत्र में किए गए हैं। दोनों के बीच हुए 51 में से 30 समझौते रणनीतिक आर्थिक गलियारे से जुड़े हैं।

इस परियोजना के तहत चीन के अल्पविकसित पश्चिमी क्षेत्र को पाक अधिकृत कश्मीर के रास्ते पाकिस्तान के अरब सागर से जुड़े ग्वादार बंदरगाह को सड़कों, रेलवे, व्यावसायिक पट्टियों, ऊर्जा योजनाओं और पेट्रोलियम पाइपलाइनों के मिश्रित नेटवर्क से जोड़ा जाना है। इस गलियारे का निर्माण तीन साल में पूरा होने की उम्मीद है। यह करीब 10,400 मेगावाट बिजली उपलब्ध कराएगा। इससे चीन को हिंद महासागर व उससे आगे सीधी पहुंच उपलब्ध होगी।

एक कथन है कि शत्रु का शत्रु सबसे अच्छा मित्र होता है। चीन यह बात बहुत अच्छे से जानता है। इसी नाते वह भारत को दुश्मन मानने वाले पाकिस्तान को साधने तथा उसका भारत के खिलाफ इस्तेमाल करने की लगातार कोशिश करता रहता है, जिसमे कि उसे अपेक्षित कामयाबी भी मिली है. इसका सबसे ताजा उदाहरण हाल में देखने को मिला जब भारत ने पठानकोट हमले तथा देश में हुए अन्य कई और आतंकी हमलों के गुनाहगार जैश–ए–मोहम्मद प्रमुख मसूद अजहर पर अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध लगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र में प्रस्ताव पेश किया।

दरअसल यह तो एक मौका है जब चीन का पाक प्रेम और भारत विरोध अंतर्राष्ट्रीय पटल पर सामने आया है. अन्यथा तो वो लम्बे समय से और विभिन्न स्तरों पर भारत के खिलाफ पाक का साथ देता रहा है। विगत दिनों चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के पाकिस्तान दौरे के दौरान भी चीन का ऐसा ही कुछ रुख देखने

को मिला था, जब उसने इस दौरे के दौरान भारत की तमाम आपत्तियों के बावजूद गुलाम कश्मीर से होकर गुजरने वाले 46 अरब डॉलर के चीन–पाकिस्तान आर्थिक कॉरीडोर की शुरुआत कर दी थी।

इसके अलावा चीन की तरफ से पाकिस्तान को घोषित–अघोषित रूप से तमाम आर्थिक व तकनिकी सहयोग आदि मिलता रहता है. साथ ही, जम्मू–कश्मीर विवाद को लेकर भी चीन अकसर पाकिस्तान के पक्ष में खड़ा होता रहा है और पाक अधि ाकृत कश्मीर में तो उसके सैनिकों की मौजूदगी की बात भी सामने आ चुकी है। अब वैसे तो चीन का पाक–प्रेम नया नहीं है मगर हाल के एकाध वर्षों में ये प्रेम काफी ज्यादा बढ़ता दिख रहा है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि विगत वर्ष भारत में नई सरकार के गठन के बाद से ही भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा भारतीय विदेश नीति को जिस तरह से साधा गया है, उसने कहीं न कहीं भीतर ही भीतर चीन को परेशानी में डाल दिया है। फिर चाहें वो एशिया हो या यूरोप मोदी भारतीय विदेश नीति को सब जगह साधने में पूर्णतः सफल रहे हैं।

एशिया के नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश, मालदीव, जापान आदि देश हों, विश्व की द्वितीय महाशक्ति रूस हो या फिर यूरोप के फ्रांस, जर्मनी हों अथवा स्वयं वैश्विक महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका, इन सबके दौरों के जरिये प्रधानमंत्री मोदी ने पिछले 10–11 महीनों के दौरान भारतीय विदेश नीति को एक नई ऊंचाई दी है. साथ ही इनमें से अधिकांश देशों के राष्ट्राध्यक्षों का भारत में आगमन भी हुआ है।

भारत की बढ़ती वैश्विक साख ने चीन को परेशान किया हुआ था कि तभी भारत के दबाव में आकर श्रीलंका ने चीन को अपने यहां बंदरगाह बनाने की इजाजत देने से इंकार कर दिया। वहीं दूसरी तरफ भारतीय प्राधानमंत्री नरेंद्र मोदी मॉरीशस और सेशेल्स में एक–एक द्वीप निर्माण की अनुमति प्राप्त कर लिए. इन बातों ने चीन को और परेशान कर के रख दिया।

कहीं न कहीं भारत की इन्हीं सब कूटनीतिक सफलताओं से भीतर ही भीतर बौखलाए चीन की बौखलाहट इन दिनों पाकिस्तान पर हो रही भारी मेहरबानी के रूप में सामने रही है. कहने की जरूरत नहीं कि इन सब गतिविधियों के मूल में चीन का एक ही उद्देश्य है कि पाकिस्तान के जरिये भारत को दबाया जाए और परेशान किया जाए. चूंकि, पाकिस्तान भारत का ऐसा निकटतम पडोसी है, जिससे भारत के सम्बन्ध अत्यंत खटास भरे रहते आए हैं। चीन भारत–पाक संबंधों की इसी अस्थिरता का लाभ लेने की कोशिश में रहता है और कूटनीतिक .ष्टिकोण से उसका ये करना गलत भी नहीं कहा जा सकता।

वर्तमान समय में समस्याओं की अधिकता है। चीन, पाक व भारत तीनों के

आर्थिक सम्बन्ध तो सुदृढ़ हैं किन्तु रिश्तों में कटुता की दृष्टि से आपस में देखें तो लगता है कि युद्ध न हो जाये। विकास करना मुश्किल है किन्तु विनाश के बाद की परिस्थिति की कल्पना भी रोंगटे खड़े कर देती है। भारत की संस्कृति सदैव समन्वय वाली रही है। यहाँ भी आज एक माह हो गया। समन्वय व शान्ति की चाह रखने वाले भारतीय सेना ने अपने बल से स्थिति को संभाले रखा है। लेकिन कब तक ऐसा और चलेगा। इसका अन्त करने का रास्ता मात्र समझौता है। समन्वय नीति शायद यहाँ काम नहीं कर रही है अतः युद्ध की संभावना बढ़ जाती है।

संदर्भ

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, आस्था प्रकाशन, जयपुर, 2013
2. भारत–चीन सम्बन्ध, अरूण शौरी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2009
3. बीसवीं सदी में भारत चीन सम्बन्ध, केशव मिश्रा, जेननेक्स्ट पब्लिकेशन, 2016
4. दैनिक नवज्योति, 9 जुलाई, 2017

डॉ. सर्वदमन मिश्र, यू.जी.सी. (PDF)
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
विजयश्री शर्मा, शोधार्थी
आई.आई.एस. विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

ब्रिटिश कालीन समाचार–पत्रों के विज्ञापनों में प्रतिबिं बत सामाजिक वर्ग

विज्ञापन आधुनिक औद्योगिक समाज के दैनंदिन जीवन का अविभाज्य अंग हैं। विज्ञापन में प्रदर्शित उत्पाद और संदेश–स प्रेषण समकालीन संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

पिछली दो शता□दियों में उपभो□तावादी संस्कृति का प्रसार हुआ और इसी के साथ विज्ञापन संस्कृति विकसित होती चली गई। विपणन और प्रसारण जगत के अध्येता इस बात पर बल देते हैं कि विज्ञापन बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का प्राणतत्व है। क–भ के दशक के प्रार भ में वेन्स पैकार्ड ने विज्ञापनों के प्रभाव पर एक गहन शोध किया जो हिडन परसुएडर्स के नाम से प्रकाशित हुआ। पैकार्ड ने यह स्थापना दी कि विज्ञापनों से हम जाने–अनजाने ही गहराई से प्रभावित हो रहे हैं। यह न केवल हमारे खरीदने के निर्णय को प्रभावित करते हैं वरन् हमारी आदतों और विचार प्रक्रिया को भी बदल देते हैं।[क]

ख्वीं शता□दी में औद्योगिकीकरण और मीडिया के साथ–साथ विज्ञापनों में भी अपूर्व वृद्धि हुई। इस समय के विज्ञापन जनसामान्य की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रतिबि ब हैं। क–ख में अमेरिका की प्रसिद्ध विज्ञापन क पनी एन.ड□ल्यू. एअर एण्ड सन्स ने यह दंभो□त की कि भविष्य के इतिहासकारों को इस कालखण्ड के इतिहास निर्माण के लिए संग्रहालयों और बोझिल दस्तावेजों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होगी। दिन–प्रतिदिन हमारे समय की विश्वसनीय छवि उन विज्ञापनों में दर्ज हो रही है जो हमारे समय के समाचार–पत्रों में छप रहे हैं।[ख] कुछ हद तक यह सही भी है। पुराने विज्ञापन ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान निधि हैं, जो कालखण्ड विशेष में अवस्थित जनसामान्य और उनके द्वारा बरते जाने वाली वस्तुओं का रोचक खाका प्रस्तुत करते हैं। विज्ञापन वस्तुतः स यता के लघु चित्र हैं। विज्ञापन की छवियों और तत्कालीन सामाजिक यथार्थ में एक विशिष्ट संबंध होता है। अपनी वस्तु को बेचते समय विज्ञापन निर्माता उपभो□ता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का बारीकी से ध्यान रखते हैं। वो अपने विपणन

सन्देश को उन मूल्यों और दृष्टिकोणों के साथ समीकृत करते है, जो समाज में मान्य होते हैं। वो कभी प्रचलित सामाजिक आदर्शों के विपरीत विज्ञापन तैयार नहीं करते। इस प्रकार विपणन सन्देश समय विशेष के सामाजिक यथार्थ को जानने के साधन न हो तो भी सामाजिक आदर्श को जानने के साधन तो अवश्य हैं।

विज्ञापन समाज को कई तरीके से प्रतिबि बत करते है। एक स्तर पर विज्ञापन समय विशेष पर मनुष्य के लिए उपल ध भौतिक वस्तुओं का लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हैं। वे तकनीकी ज्ञान की स्थिति, वस्त्र विन्यास का फैशन, फर्नीचर, सज्जा आदि का भी प्राकटीकरण करते हैं।

विज्ञापन विभिन्न वर्गों के सामाजिक स्तर को भी प्रतिबि बत करते हैं। वो उपभो ता वस्तुओं की विविधता और गुणव ा के आधार पर सामाजिक जीवन का एक पदानुक्रम तैयार करते हैं। इस प्रकार समाचार पत्रों में छपे विज्ञापन हमें उस समाचार पत्र विशेष के पाठक वर्ग के सामाजिक जीवन के गठन को जानने का आधार प्रस्तुत करते है।

भारत में आधुनिक विज्ञापनों की शुरुआत, आधुनिक समाचार–पत्रों की शुरुआत से ही हुई। क्त्वीं शता दी के उत्तरार्द्ध से तीन प्रेसीडेन्सी नगरों से समाचार–पत्र छपने लगे।[ग] ये पत्र मूलत: प्रेसीडेन्सी नगरों में रहने वाले यूरोपियनों के लिए ही थे। भारत का पहला अखबार जे स आगस्टस हि की का बंगाल गजट था।[घ] इसका मूल नाम कैलकटा जनरल ऐडवाइजर था। जिसमें खबरों के अतिरि त 'लीगल नोटिस' और निजी सूचनाएं विज्ञापन के रूप में छपते थे।[ङ] प्रारि भक अखबारों में उन वस्तुओं के विज्ञापन भी छपा करते थे जो यूरोप से आने वाले जहाजों में लाद कर भारत में रह रहे यूरोपियनों के लिए लाई जाती थीं।

ख्क सितंबर क्त्र–प के बॉ बे कूरियर में एक विज्ञापन छपा जिसमें लंदन से आए जहाज में आई उपभो ता वस्तुओं का उल्लेख था। इन वस्तुओं को एक गोदाम में प्रदर्शन करके बेचा जाना था। विज्ञापन में जिन वस्तुओं का उल्लेख था, वो थीं– हॉजरी, जूते और बूट्स, बीयर, चीज़, आचार इत्यादि।[च] इस कालखण्ड के विज्ञापनों में शराब और बीयर के अत्यधिक विज्ञापन छपते थे। क्त्वीं शता दी के सां यकी आँकड़ों से भी यह पुष्ट होता है कि शराब की लत के कारण काफी सं या में यूरोपियन मर जाते थे।

भारतीय अखबारों के विज्ञापनों में क्रान्तिकारी बदलाव और विस्तार ख्वीं शता दी की शुरुआत में आया। क–क में भारत की जनसं या लगभग ख्– करोड़ ब्फ लाख थी।[छ] भारत में शहरों का विस्तार हो रहा था। औद्योगिकीकरण में भी कुछ गति आई थी विशेषकर बंगाल और महाराष्ट्र में औद्योगिकीकरण की गति तेज थी। रेलवे के विस्तार ने भी गति

दी। देश के अंदरुनी हिस्से बन्दरगाहों से सीधे जुड़ गए और इससे उपभो□ता वस्तुओं की आवाजाही सुगम हो गई। शता□दी की शुरुआत में भारत में क्फ्म्‌ जॉईन्ट स्टॉक कंपनियां थीं।[ट] यद्यपि भारत में साक्षरता का स्तर कम था फिर भी पिछले दो शता□दियों की तुलना में वृद्धि हो रही थी। हालांकि शिक्षित वर्ग छोटा–सा वर्ग था जो शहरों में केन्द्रित था। इसी वर्ग को ध्यान में रखकर विज्ञापन संदेश छापे जाते थे। बीसवीं शता□दी के आते–आते अखबारी विज्ञापनों की सं या और गुणवत्ता में उ□ारो□ार वृद्धि हुई।

क–भ में कलक□ाा से प्रकाशित स्टेट्समैन में एक टिप्पणी प्रकाशित हुई जिससे कहा गया कि ''प्रश्नातीत रूप से, विज्ञापनों का पत्रकारिता के विकास में सर्वाधिक प्रभावशाली योगदान है। भ वर्ष पहले कम विज्ञापनों के कारण कम खबरें होती थी। आज विज्ञापनों की बहुतायत ने दुनियाभर से खबरों को संकलित करने की सुविधा प्रदान कर दी है।''[-]

इस समय अधिकांश अखबारों में एक विज्ञापन विभाग होता था वो ही विज्ञापन देने वाली क पनी की ओर से विज्ञापन का मसौदा और रूपरेखा तैयार करता था। जैसे–जैसे विज्ञापनों में गुणव□ाा की मांग बढ़ने लगी वैसे–वैसे विज्ञापन तैयार करने के लिए विशेषज्ञता और व्यावसायिक कौशल की माँग बढ़ी और इसी के साथ भारत में विज्ञापन एजेन्सियों का प्रादुर्भाव हुआ।

भारत की पहली विज्ञापन एजेन्सी क–भ में गठित द□ााराम एडवर्टाइजिंग थी।[क] द□ााराम एडवर्टाइजिंग का गठन समय से आगे की घटना थी इसे हम यूँ समझ सकते हैं कि अमेरिका में कैलोग्स कंपनी के पहले विज्ञापन से भी एक वर्ष पूर्व इसका गठन हो चुका था। इसी प्रकार प्रॉ□टर एंड गे बल के अमेरिका में सुनियोजित विज्ञापन अभियान छेड़ने से छः वर्ष पूर्व इस एजेन्सी का गठन हो चुका था।[क्क]

क–ख के दशक में भारतीय विज्ञापन जगत का उत्थान और तीव्र हुआ। इस दशक में कई अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञापन एजेंसियों ने भारत में अपने कार्य की शुरुआत की। इन क पनियों में जे.ड□ल्यू. थॉमसन, डी.जे. कैमर, स्ट्रॉन्च प्रमुख हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में कतिपय समाचार–पत्रों में छपे विज्ञापनों के सामाजिक अध्ययन का प्रयास किया गया है। इस हेतु चार समाचार–पत्रों का चयन किया गया है, जिसमें से सिविल एंड मिलीटरी गजेट एवं पायोनियर अंग्रेजी के अखबार हैं तथा आज और नवज्योति हिन्दी के हैं।

सिविल एंड मिलीटरी गजेट तथा पायोनियर दोनों ही अंग्रेजों के स्वामित्व के अखबार थे और ब्रिटिश शासनकाल में इनका मूल पाठक वर्ग भी एंग्लो–इंडियन ही था।[क्ख] जबकि

आज तथा नवज्योति राष्ट्रीय विचारधारा से अनुप्राणित और भारतीयों द्वारा संचालित अखबार थे। सिविल एंड मिलीटरी गजेट तथा पायोनियर क–वीं शता□दी के उ□रार्द्ध से प्रकाशित हो रहे थे। सिविल एंड मिलीटरी गजेट का प्रकाशन क्त्स्त्रम् में लाहौर से प्रारंभ हुआ।[क्प] पायोनियर का प्रकाशन क्त्म्भ् में इलाहाबाद में प्रारंभ हुआ।[क्ब]

हिंदी के दोनों ही अखबार ख्वीं शता□दी के तीसरे एवं चौथे दशक में प्रार भ हुए। आज का प्रकाशन क–ख में काशी से प्रारंभ हुआ।[क्क] आज के संपादक श्री शिवप्रसाद गुप्त थे, जो पत्रकार जगत में अपने प्रचण्ड राष्ट्रीय विचारों के लिए जाने जाते थे। आज के मुखपृष्ठ पर रामचरित मानस की चौपाई छपती थी– पराधीन सपनेहूं सुख नाहीं जो कि पत्र के तेवर की व्यंजक थी।[क्म] नवज्योति का प्रकाशन क–फ्म् से अजमेर से प्रारंभ हुआ।[क्ख] इसके संपादक श्री रामनारायण चौधरी थे जो स्वयं एक राष्ट्रवादी नेता तथा अनुभवी संपादक थे। प्रस्तुत अध्ययन के लिए इन चारों समाचार–पत्रों की क–फ्त की जनवरी–फरवरी माह की फाईलों को आधार बनाया गया है।

अंग्रेजी के दोनों समाचार–पत्रों में विशेषकर सिविल एंड मिलीटरी गजेट में छपे विज्ञापनों से यह आभासित होता है कि भारत एक अत्यन्त समृद्ध और उपभो□तावादी समाज था। इसमें छपे कोहीनूर पेंसिल, फिनि□स होजरी स्टाकिंस से लेकर हडसन एसे□स, डॉज, ऑस्टिन आदि कारों के विज्ञापन अपनी विविधता और प्रचूरता से हतप्रभ कर देते हैं।[क्त]

सिविल एंड मिलीटरी गजेट तथा पायोनियर का मूल पाठक वर्ग एंग्लो–इंडियन था; यह विज्ञापनों की भाषा और भंगिमा से ध्वनित होता है।

ख जनवरी क–फ्त को प्रकाशित ओवलटाईन नामक एनर्जी पेय के विज्ञापन में कहा गया है कि भारत में उपल□ध भोजन सामग्री में पोषक तत्वों की कमी है अतएव भारत में 'नौरिशिंग फूड' की पूर्ति हेतु ओवलटाईन टॉनिक ब्रेवरिज जरूरी है। विज्ञापन में एक एंग्लो–इंडियन परिवार खाने की टेबिल पर बैठा है; जिसमें पति–पत्नी और एक किशोर लड़की दर्शाये गए हैं, जबकि एक भारतीय नौकर उन्हें खाना परोसता दर्शाया गया है।[क]

एक दूसरा विज्ञापन जो लगभग नियमित रूप से इस अखबार की जनवरी–फरवरी क–फ्त की फाईलों में मिलता है, वह है– क्रॉस एंड □लैकवेल कंपनी का विनेगर। इस विज्ञापन की भंगिमा व भाषा भी यह व्यंजित करती है कि यह मात्र एंग्लो इंडियन पाठकों को संबोधित है–विज्ञापन में डायनिंग टेबिल को व्यवस्थित करते एक भारतीय नौकर को दर्शाया गया है। वह विनेगर की बोतलों के छोटे क्रेट को टेबिल पर जमा रहा है। चित्र

के नीचे लिखा है- विनेगर भारतीय खाद्य सामग्री के स्वाद को बढ़ा सकता है।[ङ] एक और ऐसा ही विज्ञापन है- वाटरबर्रीस कंपाउंड। इसे बच्चों के लिए एक हेल्थ सप्लिमेंट बताया गया है। विज्ञापन में एक इंग्लिश माँ और बच्चे का आरेख है और बहुत बड़े फोंट में चेतावनी के अंदाज में लिखा है-If you can not send them home आगे खुलासा किया गया है कि बच्चों को यदि भारत की अस्वास्थप्रद जलवायु में ही रखना है तो उन्हें नियमित रूप से वाटरबर्रीस कंपाउंड दिया जाना चाहिए।[छ] सिविल एंड मिलिटरी गजेट तथा पायोनियर का पाठक वर्ग स्पष्टत: अभारतीय था इसके साथ ही निश्चित रूप से यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से संपन्न था। जब भारत की अधिसं य जनता भोजन व वस्त्रों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कठिनाई से करती थी; उस कालखण्ड में इन पत्रों के विज्ञापनों से ध्वनित होता है कि यह वर्ग उपभो□ता सामग्री की प्रचूर उपल□धता का साक्षी था।

सिविल एंड मिलिटरी गजेट की फाईलों से ज्ञात होता है कि क-फ्त में भी लाहोर में आज के डिपार्टमेन्टल स्टोर की तर्ज पर स्टोर हुआ करते थे और इन 'स्टोर्स' में उत्कृष्ट उपभो□ता सामग्री उपल□ध होती थी। उस कालखण्ड में अधिकांश विज्ञापन स्टोर्स द्वारा ही दिए जाते थे-लाहौर में मुर्री एंड कंपनी, साल्वेशन आर्मी, जेन एंड एलर्टन स्टोर, आर्मी एंड नेवी स्टोर इत्यादि प्रमुख स्टोर थे।[ज] इन स्टोर्स पर दैनंदिन जीवन की आवश्यकता की वस्तुएँ तथा डि□बा बंद खाद्य सामग्री जैसे बिस्कुट, ब्रेड इत्यादि मिला करते थे।

लाहोर में कारों के शोरूम काफी मात्रा में थे और यह एक रोचक तथ्य है कि अधिकांश के मालिक भारतीय थे। लाहौर की जानकीदास एंड कंपनी-कारों के अतिरि□त मोटर साईकिलों की विक्रेता भी थी।[झ] एक अन्य क पनी नारायणदास एंड कंपनी सेकण्ड हैण्ड कारों के विक्रय का काम भी करती थी। विज्ञापनों से ज्ञात होता है कि सैकण्ड हैण्ड कारों का मूल्य भ-फ रुपये के मध्य होता था।[ञ] प्यारेलाल एंड संस आस्टिन कार के विक्रेता थे। इसके अतिरि□त □यूक, डॉज, हडसन ऐसे□स भी लोकप्रिय कारें थी। नई उपभो□ता इलै□ट्रॉनिक वस्तुओं का बड़ा आकर्षण था। पायनियर में नियमित रूप से GEC कंपनी के रेडियो का विज्ञापन छपा करता था। GEC के ओवन, इलैि□ट्रक केटली इत्यादि भी नियमित विज्ञापित किये जाते थे।[ट]

पायनियर के एक अंक में कोडक के मूवी कैमरे का विज्ञापन है जो घरेलू उपयोग के लिए बनाया गया है।[ठ] इसी प्रकार पाथे इंडिया नामक एक कंपनी के मूवी कैमरे तथा प्रोजे□टर का विज्ञापन सिविल एंड मिलीटरी गजेट में नियमित रूप से दिखलाई पड़ता है। यहां कैमरे का मूल्य क्ब/- दर्शाया गया है।[ड] इससे ज्ञात होता है कि संपन्न उपभो□ताओं के लिए उस कालखण्ड में भी निजी चलचित्र बनाने और देखने की सुविधा उपल□ध

थी। इन अखबारों में प्रसाधन सामग्री जैसे–लोशन, क्रीम और साबुनों के विज्ञापन इतनी सं या में है कि प्रतीत होता है कि आज की भाँति उस कालखण्ड में भी विज्ञापन का सर्वाधिक उपयोग इसी कोटि की उपभो ता वस्तुओं की निर्माता कंपनियां करतीं थी; जिन्हें आज सामूहिक रूप से एफ.एम.सी.जी. कहा जाता है। आज के लोकप्रिय ब्रांड ल स, पीयर्स, लाइफ वॉय, हमाम उस दौर में भी मौजूद थे।[छ]

इन फाईलों से ऐसा भी प्रतीत होता है कि एफ.एम.सी.जी. से भी ज्यादा विज्ञापनों का प्रयोग सिगरेट कंपनियाँ करती थीं। अंग्रेजी के दोनों अखबारों में सिगरेट की विभिन्न ब्रांडों के इतने विज्ञापन हैं मानो सिगरेट पीना सामाजिक व्यवहार (Social Etiquette) का अनिवार्य हिस्सा हो। एंग्लो–इंडियन महिलाओं में भी सिगरेट पीने की सामाजिक स्वीकृति थी। कतिपय ऐसे सिगरेट ब्राण्ड भी हैं जो महिलाओं को ध्यान में रखकर विकसित किए गए हैं; इनमें गोल्ड लैक का वर्जीनिया ब्रांड तथा क्रावेना प्रमुख हैं।[ज]

अंग्रेजी के इन दोनों समाचार–पत्रों के विज्ञापनों की तुलना जब हम इसी कालखण्ड के हिन्दी के दो प्रमुख समाचार–पत्रों में छपे विज्ञापनों से करते हैं तो एक दूसरा ही भारतीय समाज उद्घाटित होता है।

आज और नवज्योति की जनवरी क–फ्त की फाईलों में उपभो ता सामग्री के विज्ञापन लगभग नगण्य है। ज्ञातव्य है कि हिन्दी के समाचार–पत्रों का पाठक वर्ग भी भारतीय समाज का मध्यम वर्ग ही माना जाना चाहिए योंकि क–ब्क में भारत में साक्षरता की दर 16.1% थी।[झ] इस प्रकार हिन्दी के समाचार–पत्रों का पाठक वर्ग उस छोटे से समूह का ही हिस्सा था जो साक्षर थे और किसी–ना–किसी संतोषजनक आर्थिक गतिविधि में कार्यरत थे।

आज में मुख–पृष्ठ पर ही अधिकांश विज्ञापन छपते थे और मुख पृष्ठ पर खबरों से अधिक विज्ञापन हुआ करते थे। जनवरी क–फ्त की आज की फाईल में लगभग पूरे माह मुख पृष्ठ पर एक बड़ा विज्ञापन कलक ा की किसी बदलराम–लक्ष्मीनारायण कंपनी का है, जिसमें कंपनी द्वारा निर्मित तंबाकू, किमाम और जर्दे को विज्ञापित किया गया है।[ञ]

इन दोनों ही पत्रों में आयुर्वेद की दवाओं के विज्ञापन बड़ी मात्रा में है और इन विज्ञापनों से ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश भारतीय पुरुष यौन दुर्बलता के शिकार थे।

तिला नंबर एक, रॉयल तिला, रिटेन्टो, झीन–सीन गोल्ड टॉनिक इत्यदि कतिपय ब्रांड

है जिनके विज्ञापन हमें नियमित रूप से देखने को मिलते हैं और जो विज्ञापनों में पुरुषों की यौन दुर्बलता दूर करने का दावा करते हैं।[फ७] इसी से मिलते-जुलते विज्ञापन कतिपय यौन शास्त्र की पुस्तकों के हैं जो कोकशास्त्र, त्ब आसन इत्यादि नामों से विज्ञापित की गई हैं।[फ्फ] बवासीर और सुजाक के इलाज के विज्ञापन भी इतने अधिक हैं मानो ये उस काल में भारत के प्रमुख रोग हो।[फ८]

डाबर और हमदर्द जैसी कंपनियां उस दौर में कार्यरत थी □योंकि दोनों ही पत्रों में हमदर्द की साफी तथा डाबर के द्राक्षासव के विज्ञापन देखने को मिलते हैं।[फ्भ]

आयुर्वेदिक दवाओं के अतिरि□त विज्ञापनों का दूसरा बड़ा वर्ग बीमा कंपनियों का है। इनमें एक कंपनी का नाम रोचक है- स्वदेशी बीमा कंपनी। नवज्योति के कई अंकों में इसका विज्ञापन नियमित रूप से आया है। जहाँ दावा किया गया है कि स्वदेशी उन्नतिशील है।[फ्क]

इस कालखण्ड में स्वदेशी नामक कई कंपनियाँ थी। इसके अतिरि□त कई कंपनियां ऐसी भी है जो कि स्वदेश निर्मित होने का गर्वपूर्वक ऐलान करती थीं। ऐसी ही एक कंपनी थी गोदरेज। दोनों ही पत्रों में गोदरेज के नहाने के साबुनों के विज्ञापन हैं; जिनमें उनके स्वदेश निर्मित होने पर गर्व किया गया है।[फ्त्र] यह पाठक वर्ग के राष्ट्रवादी झुकाव को व्यंजित करता है।

गोदरेज साबुन के अतिरि□त अफगान स्नो और बिल्क्रीम नामक दो और प्रसाधन ब्राण्डों के विज्ञापन हमें इन पत्रों में मिलते हैं।[फ्ट] यह देखकर आश्चर्य होता है कि ऐवरेडी टॉर्च तथा कलाई घड़ियों की दो-एक कंपनियों के अतिरि□त अन्य किसी भी उपभो□ता सामग्री का विज्ञापन इन समाचार पत्रों में नहीं मिलता है।

नवज्योति में ऐवरेडी टॉर्च का विज्ञापन नियमित रूप से प्रकाशित हुआ है जिसका भी उपयोग अंधेरे में भैंस का ठीक तह से बाँधने के लिए बताया गया है।[फ्]

स्पष्टत: हिन्दी के इन समाचार-पत्रों का पाठक वर्ग आर्थिक दृष्टि से इतना संपन्न नहीं था कि वह कार और रेडियो जैसी महंगी उपभो□ता सामग्री का ग्राहक हो अतएव इन पत्रों में ऐसी वस्तुओं के विज्ञापन नहीं है। हिन्दी और अंग्रेजी के पाठक वर्ग की अन्य रुचियां भी भिन्न-भिन्न हैं। हिन्दी के पत्रों में तंबाकू, जर्दा और सुरती के विज्ञापन तो हैं परन्तु सिगरेट और सिगार के विज्ञापन नगण्य हैं। जिस तरह से हिन्दी के पत्रों में अफीम की लत छुड़ाने की आयुर्वेदिक दवाओं के विज्ञापन मिलते हैं उसमें यह भी इंगित होता है कि भारत के देशीय समाज में अफीम के नशे की लत ज्यादा व्यापक थी। खाद्य सामग्री की दृष्टि से भी देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि भारत के देशीय

समाज में बिस्कुट, केक, पेस्ट्री इत्यादि का चलन एंग्लो-इंडियन समुदाय की तुलना में नगण्य था।

वस्तुतः हिंदी और अंग्रेजी, विशेषकर एंग्लो-इंडियन्स द्वारा संचालित समाचार-पत्रों के पाठक वर्ग पूर्णतः भिन्न दो सामाजिक वर्ग थे; इसकी पुष्टि समाचार-पत्रों में छपे विज्ञापन विश्वसनीयता से करते हैं।

टिप्पणियाँ

क. वेंस, पैकार्ड, द हिडन पर्सुएडर्स, आई जी पिलशिंग, पृष्ठ भ्ख

ख रोलैंड, मर्चेंड, एडवरटाइजिंग द अमेरिकन ड्रीम, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलीफोर्निया प्रेस , पृष्ठ कभ

प. बी एन, आहूजा, हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन प्रेस, सुरजीत प्रकाशन, पृष्ठ प

ब. बी एन, आहूजा, हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन प्रेस, सुरजीत प्रकाशन, पृष्ठ ख

भ. अरुण चौधरी, इंडियन एडवर्टाइजिंग क्स्त्रत्त टू क–भ, टाटा मैग्राव-हिल, पृष्ठ क

म. अरुण चौधरी, इंडियन एडवर्टाइजिंग क्स्त्रत्त टू क–भ, टाटा मैग्राव-हिल, पृष्ठ कक

स्त्र. अरुण चौधरी, इंडियन एडवर्टाइजिंग क्स्त्रत्त टू क–भ, टाटा मैग्राव-हिल, पृष्ठ ब्ख

त्त. मारिया मिश्रा, बिज़नस, रेस एंड पोलिटिस इन ब्रिटिश इंडिया, ओस्फोड्र्स प्रेस, पृष्ठ म–

–. रणबीर राय, चौधरी, अर्ली कैलकटा एडवरटाइज्मेंट क्त्स्त्रभ–क–खभ, नचिकेता प्रकाशन, मुंबई, पृष्ठ VII

क. दया राम, सिंह, एडवरटाइजिंग विद स्पेशिअल रेफरेंस टू इंडिया, कल्याणी प्रकाशन, दिल्ली,पृष्ठ त्त

कक. आनंद, हालवे एवं अनीता सरकार, एड कथा, सेंट्रम, ब बई, पृष्ठ ब्ब

कख स्वतंत्रता से पूर्व एंग्लो-इन्डियन शद का प्रयोग भारत में रह रहे ब्रिटिश मूल के समुदाय के लिए किया जाता था। कालान्तर में इस शद का प्रयोग ब्रिटिश और भारतीय स्त्री -पुरुष के विवाह से उत्पन्न संतति के लिए होने लगा। शोध पत्र में इस पद का प्रयोग भारत में रह रहे ब्रिटिश मूल के निवासियों के लिए ही किया गया है।

कप. बी एन, आहूजा, हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन प्रेस, सुरजीत प्रकाशन, पृष्ठ –

कब. बी एन, आहूजा, हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन प्रेस, सुरजीत प्रकाशन, पृष्ठ स्त्र

कभ. विजयदा, श्रीधर, हिंदी पत्रकारिता कोष, खंड दो, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ म्प–

कम. मंगला अनुजा, भारतीय पत्रकारिता : नींव के पत्थर, म.प्र. हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ ख्त्क

कस्त्र. मनोहर प्रभाकर, राजस्थान में हिंदी पत्रकारिता, पंचशील प्रकाशन, जयपुर , पृष्ठ त्त्म

कत्त. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

क–. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, ख जनवरी क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, जनवरी फ, म एवं फ़रवरी त्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्क. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, एवं पायोनियर माइक्रोफिल्म,, जनवरी – फ़रवरी क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्ख सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, जनवरी – फ़रवरी क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्फ. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, फ़रवरी, क्क, ख्ब एवं ख्त्र, क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्ब. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, जनवरी ब, फ़रवरी क्फ –क्ब, क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्भ. पायोनियर माइक्रोफिल्म, जनवरी क्ख, फ़रवरी ख्क , क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्म. पायोनियर माइक्रोफिल्म, जनवरी क, क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्त्र. सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, जनवरी –फ़रवरी क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख्त. धृष्टव्य, जनवरी –फरवरी के कई अंक, सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म एवं पायोनियर माइक्रोफिल्म, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

ख–. धृष्टव्य, जनवरी –फरवरी के कई अंक, सिविल एंड मिलिट्री गजेट माइक्रोफिल्म, एवं पायोनियर माइक्रोफिल्म, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

फ. लतिका चौधरी, ए न्यू इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ़ कलोनियल इंडिया,रूटलेज़, एबींगडम, पृष्ठ क्ख्ब

फ्क. आज, माइक्रोफिल्म, जनवरी क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली

फ्ख आज, माइक्रोफिल्म, जनवरी ब, म, ख्त्र क–फ्त, तीन मूर्ति पुस्तकालय, नयी दिल्ली एवं नवज्योति

Dr. Amit Kumar
Freelance Artist
Shimla
Himachal Pradesh

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

ILLUSTRATED MANUSCRIPTS OF HIMACHAL PRADESH

Scripts written in simple language and words are called manuscripts. Manuscripts or handwritten scripts are significant treasures of heritage. In the initial stages human beings used to express their thoughts and expressions in form of paintings or illustrations, but later with the development of script and material for writing and as new techniques were developed, there was a development in the paintings and illustrations. Before the advent of publications, handwritten manuscripts are testimonial to different creations.

In antiquity, animal skin, Tadpatra, Bhojpatra etc. were used on which the scripts used to be written by hand and they usually had yellow color on it, (Panduvarn in Hindi) hence the name of manuscripts is (Pandulipi in Hindi), like different regions, there are a number of manuscripts in district Shimla of Himachal Pradesh. Apart from temples, there are Ancient and rare manuscripts available in different museums, libraries and in collections of different persons and scholars.[1]

Preserved in the state museum at Shimla, it comes to light from this manuscript that a strong tradition of painting was prevalent in the western Himalayan region before the advent of the Mughals. In addition to this an illustration created by artist Golu which was possessed by Mahant of Nar Singh temple Fatehpur (Nurpur) is of special importance. An illustration 'Karurabharan' illustrated in the Basholi style has been preserved and secured at Bharat kala Bhawan in Banaras. Similarly there is the 'Saundrya Lehri' script which has been prepared in Garhwali style in 1870 Samvant according to Hindu calendar on the banks of river Alaknanda. If we study these illustrated manuscripts according to styles used in them these have reflections of folk tradition in them. The painters have not created this illustrations keeping in view the specialties and

elements of different styles, thus it becomes difficult to identify the styles and schools of painting in there. The different styles can be distinguished on the basis of the contours of creations of costumes, ornaments, color and shapes and images of faces.[2] These handwritten illustrated manuscripts are significant in understanding the cultural, religious, political and social aspects of the Himachal.

Himachal Pradesh has two museums, one is in Shimla and other is in Dharmasala which have the rare manuscripts in archive. The Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla is an Autonomous Trust under the Govt., of Himachal Pradesh and it was established for the development of Arts, Culture and Languages of the state. The Academy has a collection of more than 500 manuscripts written in Sarada and Takri which are preserved in its Libraries across the state.

The Academy signed the MOU with the Mission in May 2005. Since then the MRC has been given financial support towards its whole MRC related activities. Out of its total data contribution 12,199 have been web-loaded till date. Dr. Sudarshan Vashisth was the first Project Coordinator of the MRC and thereafter, Dr. B.R. Jaswal is continuing in the post.

In September 2006, the National Survey took place in Himachal Pradesh and through this programme the surveyors could successfully locate approximately 20,000 manuscripts across the state. During the programme, it was also seen that the school students were getting involved in the awareness campaigns to promote the documentation and conservation of manuscripts.[3]

From 6th-23rd November 2006, the Mission organized a primary level workshop on Manuscriptology and Paleography in the Baishna Mata Temple premises at Kullu, in collaboration with Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla.[4]

The other museum Library of Tibetan Works and Archives, Dharamsala in Himachal Pradesh was conceived of and founded by His Holiness the 14th Dalai Lama of Tibet. The Library of Tibetan Works and Archives (LTWA) is one of the most important institutions in the world dedicated to the preservation and dissemination of Tibetan culture. It has been operational since November 1, 1971.

As a centre for the study of Tibetan culture, the Library is firmly

dedicated to a threefold vision of preservation, protection and promotion. The Library is home to one of only two Tibetan Oral History projects in the world. The Tibetan Manuscript Collection contains more than 80,000 items, ranging from handwritten manuscripts and centuries old documents to contemporary books and periodicals. Of special value are several handwritten editions of the Kangyur and Tengyur, the Tibetan Buddhist Canon; major works of Tibet's four Buddhist traditions, the Nyingma, Kagyu, Sakya and Gelug, as well as the indigenous Bön tradition. It is in the process of completing a general catalogue of all materials in the collection. An important new project for the LTWA is the launch of the Central Archives of the Works of His Holiness the 14th Dalai Lama. The purpose of which is to gather all materials concerning his Holiness the Dalai Lama's teachings, writings and speeches.

The Library of Tibetan Works and Archives started collaborating with the Mission as an MRC since September 2003. The survey in the state of Himachal Pradesh has so far generated out 95, 628 data on manuscripts and manuscript collections related to Buddhist studies, Vastu , Sangita , Darsana, Chandas , etc. Covering 5 districts with the team of four scholars and one official of the MRC, the MRC has surveyed and documented 22 institutes in Himachal Pradesh. All the above mentioned data has been converted into electronic format. The institute has conducted 25 outreach campaigns in which more than 125 people participated.

The manuscripts are called "Pothis" in local dialects and paper rolls and scrolls are termed as 'Chilthu'. A larger number of these manuscripts are available with Brahmin families. As per tradition when joint families of Brahmin brothers take separate possession of farm land, wealth etc. these Pothis are also taken possession of by separate households and it is only after the division of the Pothis that property, weather and land is divided amongst brothers.

As such, it would be no exaggeration in saying that these people give a significant relevance to these Pothis or manuscripts. The manuscripts are here largely available with Brahmins, Rajvaids and royal families. A large part of the manuscripts available in district Shimla are those written on paper, but some of these are also available in materials like Bhojpatra, white cloth (Lattha) and copper plates.

The owners of these manuscripts keep these manuscripts in safe

custody and are also particular in keeping them pure a pious status is accorded to these and are kept in a clean place. In some places, few people or members of the family are allowed to have access to the place where the manuscripts are kept.

The manuscripts found in Shimla district are on a range of topics and subjects including on history, Vedas, Purans, Music, Religious Studies, Tantra, Mantra, Yantra etc. Apart from Rajpurohits, and Scholars of Himachal sages and scholars from Garhwal and other parts of the country have contributed in writing these manuscripts. Before independence as illiteracy was prevalent here many scholars invited Garhwali Brahmins to write these manuscripts. The scholars inherited the skill of manuscripts from their ancestors, either received knowledge from scholars who came to Himachal from Bengal, Kashi, Kashmir, Punjab and other states, or learned about manuscripts if they went to study out side the state. Some people from selected families even went to Lahore to study.

The mid 16th century is the period of beginning of the Mughal paintings in India. The initial Mughal paintings beard an imprint of Persian art and along with it had shades of Western and mid Indian art, and along with these was an admixture of Gujarati, Kashmiri, Nepali and European art also. And the credit for these influences goes to fondness for artworks of Emperor Akbar.

Akbar got the legacy of preservation, documentation as well development of manuscripts from his father Emperor Humanyun. Akbar's mother Hamidabano had a separate library (Kuteebkhan) to her credit.

The manuscripts which developed in the period by Akbar can be divided into two major categories-Non Indian artistic creations pictures of Indian creation and bases on Indian culture, history.

This phase was the period of cultural spread when different artistic forms were imbibed in Indian paintings. In the royal artistic creations, the paintings based on epics were created on a large scale. Books with pictorial descriptions were created on Indian works like Ramayana, Harivansh Puranas and Rajamnama (Mahabharata), Nal-Damyanti, besides non Indian historical works like Hamjanama, Diwan-e-Hafiz, Tutinama-Anware Suhaili and Khamsa-e-Nizami etc. Complete manuscripts of these works along with mutilated copies of some works are preserved in different museums in

the country as well abroad. Mughal art and paintings reached its pinnacle under the patronage of Akbar and his descendent. The illustrations and paintings in the manuscripts of the works of Padshahnama which was documented in the reign of Shahjahan is an example of splendor of Mughal paintings and art. The downfall of the Mughal art and paintings started during the reign of Aurangzeb and with the death of Aurangzeb in the beginning of 17th century a bloody battle ensured to capture the throne. Due to this struggle for power and continues battles amongst Mughal rulers, the Mughal art, paintings faced complete neglect.

The painters who flourished under patronage of Mughal rulers, sought refuge with the Rajput rulers after downfall of the Mughal era. The Rajput rulers had stopped paying taxes to the Mughal rulers with the decline of Mughal era. Rajput rulers who were financially sound provided patronage to the painters who flourished during Mughal period.[5]

The Pahari rulers also used to pay taxes to the Mughal rulers and being Mansabdars they used to frequent the Mughal Darbars. Being valiant warriors the rulers of Nurpur and Guler led the Mughal army with much skill and helped out the Mughal rulers in their different battlefield ventures. This interaction of the Pahari rulers helped them learn about the Mughal culture, art and Mughal Durbars, while competing with their Mughal counterparts. The Pahari rulers settled in the Himalayan plains gave state patronage to the artists. As a result this art form dwelled in these regions from the 17th century to 19th century. This art form famous worldwide today as “Pahari Paintings”.

The artists not only depicted illustrations of the episodes from religions texts but they also painted and depicted pictorially the texts from poetry works.

The oldest illustrated manuscript available in the genre of Pahari paintings is the one which was found in Jaisinghpur village in Kangra district. The paintings in this manuscript are an example of the initial period of Kangra paintings.[5]

The manuscript of “Devi Mahatmaya” largely depicts scenes between goddess and demons. Keeping in view the significance of this manuscript, head in charge of the state museum in Shimla, Dr. Vishwa Chand Ohri and another official Ajit Singh procured the manuscript for the state museum in 1995. According to the leaflets of the manuscript this work was scripted in 1575 in a place called Jaisinghpur in Kangra.

According to the painting style of Devi Mahatmaya, it can be compared to another historical work with paintings i.e. Chaur Panchashika. The Chaur Panchashika is a vivid example of the painting style prevalent in the 16th century in Northern India.

The manuscript of 'Devi Mahatmaya' which is present in the Shimla State Museum is an unbounded book as per Hindu tradition. Each page of the manuscript has Shlokas of Durga Saptashati written on both sides of a page in the 'Devnagri' script. Besides this these are beautiful illustrations of the war between Goddess Durga and the demons on the pages of this manuscript.

The illustration style depicted in the manuscript of Devi Mahatmaya available in the state museum at Shimla gives a reflection of ancient tradition of the Rajput style of paintings. The color scheme, style of painting of flora, buildings, houses and shapes in a reflection of the Indian paintings prevalent in the middle ages. Especially the big eyes of female images, the minute details on their costumes, clothes and ornaments are similar to the manuscript of chaur Panchashika paintings. A long veni and hanging points of ornaments are the special features of these paintings.

Another work with illustrations and paintings obtained from Kangra has also been famous for its paintings. Based on "Shahnama" which was work of Persian writer Firdausi, this work was created by Kashmiri artist on request of a Mughal official called Mirza Rustam. The manuscript of this Shahnama with illustrations is now present at the Chester Bottij library in Dublin. These are 299 pages in this scripture and amongst these there are 41 paintings which are illustrated in Kashmiri painting style and are influenced to a large extend by the Persian art form and style.

This work of 1695, contains the information in Persian about the date of its creation and the person on whose behest it was created as "Bee Tarikh Shehar-e-Muharram Abal Haraam san 36 Jaluswla Mutabik-e-san 1107 Dar Balad Kangra Bee Mauzib-e-Pharmaish-e-Mirza Rustam" meaning that it is on the 11th day of the pious month of Muharram and the 36th year of the kingdom i.e. 1107 Hijre that Mirza Rustam of Ngarkot requested to create these paintings.[6] However there is no reflection of local Kangra painting style or the Devi Mahatmya paintings in the style

of paintings in Shahnama. It seems that the a Kashmiri artist Shahnama working in Kashmir produced this work for the Mughal official Mirza Rustam and the work gives a reflection of style of painting prevalent in Kashmir.

A monocular background and a white line separating the sky at the pinnacle removed of the tradition that was prevalent in the painting style in the Akbar is reign in North Indian style paintings and illustration forms, and the style of painting the vegetation and the floral and plant motifs are almost similar to the earlier Pahari paintings.

The tradition of paintings and illustrations based on scriptures was prevalent in almost all states in the hills. The works like “Dilip Ranjani” by poet Uttam depicting history of state of Guler and “Brajraj Panchashika” poems written by poet Dutt for King Brijraj Dev of Jammu may not have illustrations and paintings but are of historical significance as they spell out detailed history of the Pahari states in the mountains.

However a work full of paintings and illustrations ‘Madhu Malti’ obtained from Mandi district is famous for its paintings. This manuscript was available in personal collections of Late Chandramani Kashyap of Mandi. This manuscript has paintings in the Mandi style along with Madhumalti poetry of poet Manjhanin Tankri script. Another work having paintings in ‘Mandi style’ based on the poems and creations of poet Keshavdas Rani on them of Ram Chandrika was also available in collections of Late. Kashyap.

The poems in this work were written in Devnagri script and on basis of the style of paintings this manuscript can be estimated to the period dating back to around 1775.

The manuscript with illustrations and paintings based on the work of Bihari Satsai available in collections of National Museum at New Delhi is of special importance. Bihari Satsai has been famous for its romanticism. A series of paintings based on Satsai in the Guler style of paintings are amongst the finest examples of Satsai. Another work based on Satsai is also available in the Bhuri Singh Museum of Chamba, which depicts the paintings and images of Radha and Krishna along with Manglacharan in the initial pages.

Apart from being an ardent reverent of Goddess king Umed Singh

of Chamba was a brave warrior. He organized a huge “Sahastra Chandi Yajna” in his palace and it is because of this his palace was named Akhand Chandi. King Umed Singh (1748-1763) got a temple of Chamunda Devi constructed in 1754 in the village of Devikothi. Built in Pahari style the temple is a vivid example and is known for its wooden architecture as well its wall paintings. Two artists named Lehru and Mahesh who worked in Chamba during the reign of King Umed Singh have been very famous. These artists created series of paintings based on Bhagwat Purana and Dashavtaar.

Lehru created paintings and illustrations on the basis of Chandi Path. (Durga Saptshati) which Umed Singh used to read. Some pages of this work containing the illustrations are present in the Bhuri Singh Museum of Chamba as well state museum in Shimla. Another manuscript named ‘Swapna Darpan’ with illustrations and paintings is present in Bhuri Singh museum of Chamba. This book depicts in detail the good and bad omens seen in dreams and the interpretation of these omens. On one side of the page there are illustrations and paintings and the backside of the page gives the detailed description. A series of replicas of ‘Swapna Darshan’ have been created and the oldest copy is that of in Basholi style of painting. Created around in 1700, a large number of pages of the ‘Swapna Darshan’ are available in Boston Museum of America

Paintings depicting illustrations of medical treatment for horses have been a theme of Pahari paintings in many works. These works illustrate various diseases which infect horses, besides depicting the treatments for the diseases. On one side a painting or pictorial representation of horse is done along with illustrations of the symptoms of the diseases and on the other hand medication for the diseases is written. Copies of such illustrative manuscripts with the name of ‘Ashwa Shastra’ and ‘Saindhav Shastra’ are present in Bhuri Singh museum of Chamba.

Recently copies of the ‘Pahari Ragmala’ have become famous in the artistic circles, and unfortunately pages of illustrative manuscripts extracted from museums have been sold in foreign markets. It is perhaps for the first time that the copies based on theme of ‘Ragmala’ have come to light. the Ragmala, was present in the collections of Royal family of Kangra. Illustrative manuscripts have been created on the themes of Dashavtar, Chandi Path, Strotmala, Gajendra Moksh, Bhagwad Gita, Ramayana, Mahabharata, Tantra, Jyotish (astrology), Kamshastra etc. in the Pahari

style of paintings. These scripts and works are available in collections of number of governmental, non-government are private museums. These paintings and illustrations in the illustrated manuscripts were usually created by the writers and creators. The roomed in groups and traveled in different states where they created these works on demands of their clients. They were skilled enough to prepare a number of illustrations, creative texts and copies of the work, for the royals, ministers and rich people. Most of the illustrated manuscripts do not have the names of the painters. But names of writers and publishers were written at the end of the work. After preparing copies of the manuscripts the writers would write their names and date and would also make a declaration.

;kn'k iLrd n"Ve rk-'k fyf[kr eÓk
Ófn 'köe'kö ok ek n¨"k® u nhÓrke

Meaning: I have written in the manuscript whatever I have seen in the book. If there is any error in the script I am not liable to be held responsible for it.

The manuscripts available in district Shimla are largely in Sanskrit, Hindi or in local dialects and in local scripts like Tankri, Pabuchi, Pandvani, Chandvani, Bhattakshri etc. These scripts were developed by scholars. Tankri has been largely used with slight alterations throughout the state and was used to write local dialect.

The painted manuscripts are a silent witness to several centuries of history. It is a pity that we are turning silent witness to its withering condition. Vagaries of weather have taken a very heavy toll on it. Nevertheless, it is not only the common man but also the government and every art lover that is to be blamed for sheer negligence of these precious art works.

The sustenance and maintenance of manuscripts providing a rich treat of art as evolved through the centuries but unfortunately are facing deterioration in the hands of time and nature should be considered everyone's job as a collective responsibility.

The government's endeavor should be to make efforts through departments to preserve such manuscripts and the common man too should preserve, protect and most importantly honor their heritage. Now, a time has come when art connoisseurs, concerned authorities a common man

come together and take charge of protecting these priceless art, so that coming generation can learn and admire how rich our culture has been?

References

1. Handa Om Chand, Pahari Chitrakala: Kishori Lal Vaid, (1999) Delhi
2. Ohri Vishav Chandra Art of Himachal : Page 199
3. Khandalvala, Pahari Miniature Painting: (1958) Bombay
4. Mittal Jagdish, Illustrated Manuscript of Madhu Malti: Lekh, Lalit Kala No. 3-4 (1956-59) Delhi
5. Karunabharan: Gopal Krishna, Lekh Kalanidhi, Bharat Kala Bhawan Banaras, Varsh-1
6. Goswami B.N., An illustrated manuscript of the Sunder Shringar from Kullu: Lekh Ruplekha volume no. 1 and 2,
7. Archar, Indian Painting from the Punjab Hills: (1773) volume-first, figure-37, 38-39
8. National Museum, Janpath New Delhi
9. Himachal state Library, Solan, Himachal Pradesh
10. State Museum, Shimla, Himachal Pradesh
11. Bharat Kala Bhawan, Banaras
12. http://www.namami.org/resourcecentres.htm#nor
13. Raman Tulsi, Himachal Pradesh Abhilekh or Pandulipiyan, 2012
14. Goswamy Karuna, Kashmiri Painting Assimilation and Diffusion; Produnction and Patronage, Indian Institute of Advanced Study, Shimla.
15. NMM website, www.namami.org.

Dr. Jaishree Jain
Department of Psychology,
SMS Medical College Jaipur,
Rajasthan

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

POSITIVE HEALTH PSYCHOLOGY IN THE LIGHT OF INDIAN TRADITION

The term “positive psychology” is a broad one, encompassing a variety of techniques that encourage people to identify and further develop their own positive emotions, experiences, and character traits. Positive psychology is a way to encourage patients to focus on positive emotions and build strengths, supplementing psychotherapy that focuses on negative emotions, like anger and sorrow. Techniques include the following. Reverse the focus from negative to positive; Develop a language of strength; Balance the positive and negative; Build strategies that foster hope. Indian psychology encompasses the vast body of India’s wisdom that concerns the human being the sources could be the Veda, Upanishads, Yoga, Bhagavad Gita, Buddhism and its various schools. In the recent years there has been an attempt to combine some of the methods of eastern and the Western systems of therapies in the treatment of mental disorders.

Spirituality is combined with psychotherapy in terms of meditation and yoga, taking the person deep into the realms of trans-like state where the individual is able to experience peaceful bliss. The terms Oriental psychology, Buddhist psychology, Yoga psychology and Jaina Psychology provide this positive feelings and blissful and peaceful state of mind. Such a mind can prevent mental disorders apart from curing the same.

Health Psychology may be pertinent as it is relatively, a new discipline. Health Psychology primarily emerged as a scientific discipline in 1970s and was formally recognized in 1978 as one of the divisions of American Psychological Association. Its flagship journal called Health Psychology was founded in 1982 and in the subsequent period rapid growth of the subject has been so astounding that several journals related to health psychology are internationally great in demand such as International

Journal of Behavioural Medicine, British Journal of Health Psychology etc. A paradigm shift has taken place in the recent period from the biomedical model to the biopsychosocial model that regards health and illness as resulting from an illness as resulting from an interplay of biological, psychological and socio-cultural determinants to which the individual is exposed throughout his life. Importance of life style in the causation of various health problems can hardly be overemphasized. Smoking, drinking, fast-food habits, negative attitudes and various stress-related conditions or even so-called leisure activities are often responsible for a large number of psychological illnesses. Health promotion or prevention of life-style related illnesses is usually the main agenda of Health Psychology. There is a growing evidence that a disposition for maladaptive behaviour pattern, chronic negative cognitions and unhealthy social adaptations give rise to disease-prone personality and thus play a crucial role in the development of various psychosocial or emotional disorders and also associated with poor recovery level.

Human beings has always tried to attain peace and happiness through all available means. The rapid industrialization and urbanization leading to exclusive crowding, too much of competition, excessive hurry and worry are some of the important factors which ultimately lead to mental and physical changes. Initially, a man tries to adopt himself to face such a strain. However, if such a situation is allowed to continue for a long time the person fails to adopt himself and then he starts getting the manifestations of psychosomatic changes one by one. At first he gets psychic changes such as increased in heart palpitation, ghabrahat, tremors, insomnia, sadness in mood, weight loss. As these changes continue, he ultimately becomes a victim of one of the psychosomatic stress disorder. Such as hypertension, heart disease, peptic ulcer, diabetes mellitus, migraines etc.

Hence in recent years there has been as intense research for non-medical measures not only to have control over these diseases, but also to prevent the development of these disorders. Man would like to mould his psychosomatic apparatus in such a way that he can boldly face the stress and strain of modem life without much difficulty.

Thus, in the far east, especially in Japan, zen-meditation seems to be a well developed method for attaining mental peace. The word ‘zen’

is derived from Chinese work “chan” which in turn has been derived from the sanskrit word “Dhayana”. From this, it becomes clear that along with. Buddhism the principle of Zen, which is nothing but a method of enlightenment, travelled at first to china and then to Japan sometime in the 12th century C.E. Since then, system of zen meditation has developed well. This zen meditation ispractised in in most of the Buddhist temples in Japan. Main credit goes to Suzuki as they gave scientific details of zen meditation to world.

The practice of yoga has come down from the prehistorical past. The references to yoga are available in upnishads and Puranas composed by Indian Aryans in the later Vedic and post Vedic period. It seems, there developed many schools of yoga, advocating different methods. Therefore the main credit for systematizing yoga goes to Patanjali, who is the author of yoga sutra.

By giving a scientific interpretation of yogic methods and by supplementing them with the philosophical thought as described in Bhagavad Gita, he made the greatest contribution to the physical and mental harmony throughout the world.

Thus from the time of Bhagavad Gita which is a part of Mahabharat onwards the literature on the science and philosophy of yoga has been increasingly enriched throughout the world.

Some important psychosomatic disorders and suggested plan of yogic therapy.

1. Hypertension : Relaxation is the basic practice. Recognizing the source of tensions and releasing them can give permanent relief. Most of the time one tries to block the tensions from being manifested in the form of high blood pressure. Therefore, even though blood pressure gives normal or low values, the tensions are still operating. If one realises this fact, one will be able to appreciate the importance of yogic approach which requires long journey rather than short cut.[1]
2. Relaxation after heart attack and myocardial infraction : Relaxation, changing one’s attitudes to life situations, practise of asanas based on the principle of “exersice without exertion” and taking to pranayam as a technique to understand and manipulate the functioning of the involuntary nervous system could be practised with advantage after

heart attack and by patients with myocardial infraction.[2]

3. Bronchial Asthama : The treatment could be started with suitable cleansing processes like neti, dhauti, Kapalbhati, Shankhaprakshalana, agnisara during attack free condition.This should be coupled with pranayama, relaxation and corrective asanas, Infections etc..[3]
4. Diabetes : Obese type of patients can very well start with different asanas, cleansing processes, bhastrika and relaxation while learn and thin type of patients should start with relaxation and pranayama. They should practiseasanas in a very relaxed manner.[4]
5. Sinusitis, Headaches : The main practices for this trouble are netiKriya of various kinds, Kapalbhati and Anulom-Viloma pranayama. The work of kaivalyadhama yogic health centre at Bombay has shown that this trouble could be tackled very effectively through yoga education.[5]
6. Obesity : Apart from cleansing processes, Bhastrika Pranayama and asanas to increase overall metabolism and induce some corrective mechanisms in the body, relaxation and meditational practices aiming at increasing the level and intensity of satisfaction arising from within has more lasting effect on the control of this problem.[6]
7. Psychological Condition : In depression various sequential practies during inhalation or breath holding after inhalation, cleansing prousses and suitable asanas to correct postural substrate should be gone through under guidance of the yoga therapist.[7]
8. CerbralPalsy : Children have shown good response to sequential type of Yogasana in a study by Mr. M.G. Mokashi at the All India Institute of Physical Medicene and Rehabilitation, Bombay.
9. Old Age Problems : It could be tackled by suitable yoga techniques Dr. Tulpule, et. al. are working in this area in Bombay after their studies on the effects of yogic exersices on middle aged men.
10. Physical fitness : minimum muscular fitness and autonomic balance in school going children was seen to improve significantly through yoga training programme.

Though, the overall aim of yoga remains the same, namely the attainment of the physical, mental and spiritual health, the methodsdescribed to to achieve this goal are manifold. Those people who advocate only

Hatha yoga or the practice of physical postures feel that this is the most fundamental part of yoga and hence it must be practice by everyone. After mastering the techniques of physical postures only one should try to do the other more complicated exercises such as Pranayam or breathing control and Dhayana or Meditation. On the other hand, many other exponents feel that in order to attain the higher level of mental activity quickly one can straight away start the practice of meditation. They fell that if one can learn to control the unstable mind all the bodily systems automatically become adjusted. Avoiding all this confusion, Patanjali has recommended eight stages of yoga discipline. They are 1.Yama (Restraints), 2. Niyama (observances), 3.Asana (physical postures), 4.Pranayama (Breathing control), 5.Pratyahara (withdrawal of sense organs), 6.Dharana (contemplation), 7.Dhayana (meditation) and 8. Samadhi (attainment of super consciousness),

Thus, a combined practice of physical postures, breathing exercises and meditation in a sequence is the best compromise to meet the present day need of the society. The results of these practices can be enhanced much more if one follows all the recommended restraints and observances in everyday life.

Yamas or restraints are five viz.

1. Ahimsa or non-violence including avoiding bodily or mental injury.
2. Satya or truthfulness in all the dealings of life.
3. Asteya or non-stealing of anything in life such as money, material, ideas, speeches or writing.
4. Brahamcharya or celibacy, which means refraining from all the activities related to sexual enjoyment directly or indirectly,
5. Aparigraha or non-possession i.e. keeping one's requirements to the bare minimum. All these five restraints are meant to prevent a person from indulging in too many undesirable worldly activities injurious to his physical and mental health.

Similarly, Patanjali has prescribed five Niyamas or observances in life. They are 1. Shaucha or cleanliness of body and mind, one should acquire clean habits in every walks of life; one should also keep his mind clean by avoiding passion, anger, greed, delusion, pride and jealousy

which may lead to the development of abnormal behavior. 2. Santosh or contentment: one should always develop a habit of contentment even under adverse circumstances so that he can concentrate and mediate without any destacle to achieve his goal. 3. Tapas or austerity with regard to food, exercise rest and recreation which will ultimately lead to the development of integrity in one's character. 4. Svadhyaya or intensive study. 5. Ishvara Pranidhana : In order to attain peace and sense of humility it is always better to dedicate the actions and fruits of our actions of God. This will help us to cultivate superior qualities of cultured human beings such as love, kindness, affection, charity etc. Unless we develop such an attitude of dedication in life we will not be able to concentrate and meditate.

References:

1. Datey, K.K. et al Shavasana, Yogic exercise in the management of hypertension angiology 20. 325, 1969.
2. (i) Tulpule, T.H. and Tulpule, A.T. - Yoga a method of relaxation for rehabilitation after myocardial infraction, India Heart Journal 32: 1980 (ii) Tulpule, T.H. et. al - Yogic exercise in the management of ischemic heart disease, India Heart Journal, 23:4:1971.
3. Bhole, M.V. et al - Rationale of Treatment and rehabilitation of asthmatics by yogic methods, collected papers on yoga published by kaivalyadhama, lonavala, 1975, Bhole, M.V. et al various scientific articles on this subject published in yoga mimamsa, Vol. 20, No. 3 & 4.
4. (i) Tuplute, T.H. - Yogic exercises and diabetes mellitus, Madhumela Journal of Diabetes Association India, Vol, 17, April, 1977. (ii) Mehmood, U-yoga and diabetes, department of medicene and diabetology, Govt. Stanley Hospital, Madras. (Personal Communication). (iii) Divekar, M.V. and Mulla, A.T. - Effect of yoga therapy in Diabetes and obesity clinical Diabetes update 1981. Published by Diabetic Association of India.
5. Bhole, M.V. - Yogic treatment of chronic rhinitis and sinusitis, Maharashtra Medical Journal Vol 17, No. 8, 1970.
6. (i) Gharote, M.L. - An evaluation of the effects of yogic treatment on obesity - A Report, Yoga Mimamsa Vol. 19, 1 : 1979 (ii) Divaker, M.V. and Mulla, A.T. effect of of Yogic therapy in diabetes and obesity - clinical diabetes update 1981.
7. (i) Bhole, M.V. - Viscero - emotional training and re-education through asanas, yoga mimamsa, vol - 19, 1-3, 44-51 (1977-78) (ii) Oak J.P., and Bhole, M.V. - ASQ and NSQ studies in asthmatics - yoga mimamsa, Vol. 20, NO. 3 & 4, 1981.
8. Mokashi, M.G. - Yogasanas as key posture in cerebral palsy, Journal India

Association of Physiotherapists, 1974.

9. Gogate, A. N. and Tulpule, T. H - Cardio respiratory, metabolic and hormonal changes in middle aged men following yogic exersices Maharashtra medical Journal, Vo. 25 No. 6 1978.
10. Gharote M.L. - effect of yogic training physical fitness. Yoga Mimamsa, Vo. XV, No. 4 : 31-35, 1973
11. Bihar school of yoga, Monghyr - Management of Asthma, Hypertension, obesity and Diabetes by yoga.
12. K.N. Udupa - Yoga and stress disorders - Banaras Hindu University, Varanasi.
13. Kuvalayananda and Vinekar - Yogic therapy : its basic principles and methods- central health education Bureau, Ministry of Health, New Delhi.
14. Bhole, M.V. - Yoga and Promotion of Primary Health Care, Yoga Mimansa, 22, 1983.

Abdul Salam Khan
Research Scholar
Mewar University
Rajasthan

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

AN ANALYTICAL STUDY OF AJANTA CAVES AND ITS RELEVANCE IN MURAL PAINTINGS

1.1 Introduction

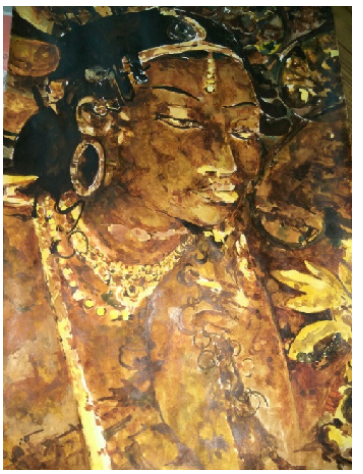

600 BC was the period of change in the religious situation in the country. The birth of Buddha and Mahavir Swami gave new light to the hearts of the people against the old traditions prevalent.

Mahavir Swami founded Jainism and his followers were called Jains and the followers of Buddha were called Buddhists. The Buddhist constructed several stupas and Viharas throughout India. SamratAshoka built 84,000 stupas, several Chaityas as well as Viharas caves for the BuddhaBhikshus to live. The stories of the past life of Buddha is known as Jataka.

Tibetan historian Lama Tara Nath has described that three style of Buddhist art were prevalent, which were known as Dev, Nag and Yaksha. Dev School belong to Central India. Naga School belongs to East and the YakshaSchool to the west. According to this classification Ajanta art is supposed to be based on Deva School. The bright history of Indian Painting start from the wall paintings of Ajanta and the scholars believe nowhere in the world such beautiful paintings were done during that age.

1.2. Situation of Ajanta Caves

The holy pilgrimage is situated in the Aurangabad District of Maharashtra from the railway station of Jalgaon there are bus rutes, uptoFardapur. River Baghora at a distance of four miles from Cardapurwhich has somany curves and on crossing the last curve one can see the

Ajanta caves. There is a hillock of about 300 ft. high in a crescent moon formation which seems like a natural sky scraper palace.

There are thirty caves, previously only 29 caves were known but the 30th cave is small one, in which some scenes of the Buddha life have been inscribed and some stone statues are also there. The caves are of two types 1. Chaityas and 2. Viharas. Chaitya caves was used as place of worship and religious discourses. Cave number 9,10,19,26 and 29th are the Chaitya cave rest are Vihara cave which are living places for the Bhikshus. 29th Cave is considerd as the biggest cave. The cave number – 1st is the biggest one which is about 120ft long and most beautiful. Almost all the cave are painted initially but now the painting are visible only in the 1st, 2nd, 9th, 10th, 11th, 15th and 16th, 17th.

1.3. Discovery and Renovation of Ajanta Caves

In 1819 some officers of Madras Regiment saw this paintings for the first time while going for hunting. After three years in 1822 William Ruskin read about the art temples of Ajanta in an article of Bombay Literary Society. Then in 1824, James E. Alexander saw this caves and informed about these to the Royal Asiatic society. Then the Mr. Ferguson gave the details of these in writing to the East India Company in 1843 and requested for their preservation. With a result a great painter Robert Gill was sent in 1844 who got thirty copies prepared of the paintings of Ajanta which were exhibited in the Crystal Palace of England but these paintings were gaffed in fire in 1866. Then again Mr. Griffiths who was the principal of Bombay School of Art, got several copies of the Ajanta paintings prepared by his students during 1872 to 1885 and published the same work into two big volumes. This painting also caught fire at London. Only few paintings were saved which are still there in the Albert Museum

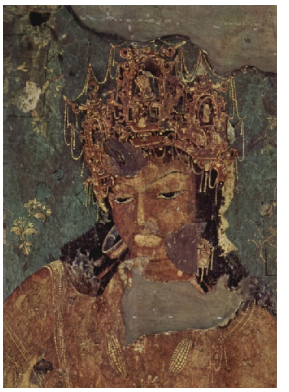

of South Kensington.

In 1909-11 Lady Herringham came to India and with the help of Shri Nandlal Bose got some more copies done of Ajanta paintings. After sometime the Government of India published paintings in four volumes and the Lalit Kala Academy got photographs of these paintings and tried to make these paintings accessible and known to the people in general. A curator was appointed in 1908 for Ajanta caves.

1.4. The Technique of Ajanta Murals

The Ajanta mural were done in Tempera Style. The surface of the place where painting was to be done,was made rough by some tool then a plaster consisting of stone powder, cow dung and rice straw was used to cover rough surface already prepared. This was covered by a thin coat of lime paste. Outline of painting drawn in red colour on this surface while it was wet then colour prepared of local pigments were applied and in the last finishing was done by black or brown colour outline.

Ajanta artists had only limited colours, which were prepared out of the locally available pigments from nature. Mostly Earthen colours were used. Main colour prepared out of red ochre, or ruddle, while red, yellow, green and at some places blue colour has also been used. Outlines have been drawn in black colour. White colour was prepared from lime or chalk. Green colour was prepared from a stone terraverte. Blue colour was obtained from neel. Yellow prepared from pevad; some believe that yellow colour might had been prepared by Arsenic, Ruddle, Ramraj and Chalk have also been used.

1.5. Subject Matter of Ajanta Painting

We find the different aspects of life painted in Ajanta caves. Lonely life of villages, luxury life of cities, beggars, fisherman, fighting soldier, hunters, bull fight, birds and animals etc. are the specialties of Ajanta painting.

According to VachaspatiGairola the painting of Ajanta can be divided into three parts as regards the subject matter they are. 1. Ornamental 2. Emotional or Expressive 3. Descriptive.

Under the first category animals, birds, flowers, creepers, giant's divine people, snakes, garuda, yaksha, gandharva and apsara are painted. In second category Buddha Buddhistavakings and different poses and Buddha birth and death event are illustrated in this category but third and final part consist of jataka tales which are maximum in numbers.

1.6. Paintings of Ajanta Caves

1.6.1. Cave no. 9th

This is supposed to be the oldest cave. It is from 200 BC to 500AD. It is rectangular Chaitya Cave. There are 21 Octagonal pillars. It is 34 meters long and 7 meters wide and 7.1 meters high. There is one stupa. The main painting here is "Naag Raja with his attendants." A procession going for "stupapooja" and the painting of Lord Buddha are also attractive. John Griffiths saw some paintings in 1875-85. The painting of two monks resembles with that of later stage or Lord Buddha. The half opened eyes show the idea of knowledge and asceticism. There are sixteen faces in the painting of stupapooja. All the faces have got different expressions. The hair style of all are also differently decorated and are attractive, Arms, neck and ears have been decorated with heavy ornaments. Ornamental patakas (a type of garment) have added to the beauty of figures.

The architectural beauty of that age is seen in the painting of stupapooja.

Black, yellow, hironji and green color had been used in the painting.

LordBuddha has been painted on the pillars. The faces are rectangular and expressionless. Here Mr. Griffiths found one painting which was visible after removing the upper layer. This is the painting of a woman who is in a sitting pose.

1.6.2. Cave no.10th

The Cave is supposed to be oldest one according to an inscription. Dravida Kings got this completed during 300 BC to 226 BC. The king were the followers of Brahman Religion but even had honor to the Buddha religion. The Cave is 29x12.1x11

meters. With are thirty nine pillars and circular roof.

Chhadanta and ShyamJatakas are painted in this cave. The king with his courtiers, is going for stupa worship and LordBuddha is painted on the pillars. In one painting the king with his ten Queens has been depicted while going for the worship of the bodh tree. Queens are shown half nude, wearing different type of ornaments like ear-rings, garlands, armlets and bangles specially the Ivory bangles. The hairstyle of all is different. Some are shown with ribbons on foreheads and Bindi also. There is one studded ornament on the head of the king on the other side of the bodh tree there is a group of ladies and an instrumentalist. Two ladies are playing on trumpet and rest one are dancing or clapping. The story of ShyamJatakas has been beautifully painted. The figures of this painting resemble to that of Bharhut. There is a beautiful scene of LordBuddha with elephants.

The story of the ChhadantaJataka is beautifully painted. The emotional depiction of elephants and the scene of the Queen being fainted at the sight of the tusks is really touching. The depiction of creepers and foliage etc. in the Jungle scene is unique. All the figure are drawn in well proportion and the composition of these cave is simply perfect.

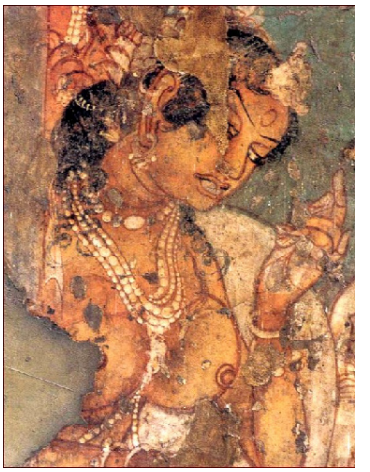

1.6.3. Cave no. 16th

This is a Vihar cave of 22 sq. meters and 4 meters high. There is one Verandah 19.5x3.1 meters outside this cave are six octagonal pillars. There is one statue of LordBuddha. The life of Buddha has been depicted in this cave. Maha Umang Jataka, Hasti Jataka, Sutasom Jataka, Dying princess apsara, preaching Buddha, procession of elephants, four scenes and the first step of Buddha towards asceticism etc. are beautifully painted here.

The most famous emotional painting of this cave is that of “Dying Princess” in it a princess is lying with the help of a maid servant with hand raised a little upwards. One maid servant is with a fan in her hand

and another one is looking in distress.

There are four more female figures in this painting. One man is sitting near the gate. Two more women are sitting in a corner. The eyes of the princess are half closed which clearly shown the feeling of pain within herself. One lady is feeling her pulse and the relatives have been painted lively in the mournful mood pity, compassion and the feeling of the pain have been very successfully shown in this painting. Ferguson and Griffiths have both praised this painting.

Four scenes are painted in this cave which developed a partly in the heart of LordBuddha against the illusive and the transitory world. These are 1. Corpse 2. Old man 3. Diseased man and 4. Monk. Painting relating to the Buddha are also there on the upper side of this cave some paintings of Buddha's childhood, the story of Sujata, and GrahTyaga is also there in this cave in which LordBuddha is leaving the apartment at night which his wife Yasodhara is sleeping with her child Rahul. Two maid servants are also sleeping on the ground. The emotion of asceticism and repose are clearly visible on the face of bodies. There are so many other paintings in this cave relating to the different aspects of Buddha life.

1.6.4. Cave no.17

It is believed that there were 61 paintings in this cave but most of them are not visible now, only few are in good condition.

The Varandah of this cave beautifully painted, some of the good painting are, the king giving arms, Gandharva and Apsaras (Divine singer and dances), Buddha worship etc. The whole roof of it is decorated by floral and creeper design. Different stages from buds to flowers, creepers, leaves etc. have been used to decorat the design. Green, yellow, white and black colours have been beautifully used. Blue colour has been used but only a few places.

A beautiful, lively and gigantic description of (ChadantaJataka) as has been painted in this cave. It has been painted in four short stories.

In the first scene the Queen plans to take revenge. In second scene the Chadanta elephant (Elephant with six trunks) has been depicted as bathing in the lotus pond and playing with the companions. In the third scene the hunters have been shown bringing the tusks in the palace and in the fourth scene the Queen has been shown as fainting after seeing the tusks. According to the story the LordBuddha was a white elephant with six tusks in one of his past life. He have two wives. One of them committed suicide because of Jealousy with the other one. She took birth in a king's home she could not forget the Jealousy even in this new life and ordered the hunters to bring the head of the white tusker, when LordBuddha came to know it. He himself approached the hunters. They took his six tusks instead to please the princes but she fainted seeing the same. Later on she came to know the whole story she begged pardon, which was granted to her by the Lord. The scene has been painted in lively style.

Jataka stories are also painted in this cave in which ShyamJataka. BesantarJataka, ShibiJataka and Maha Han's Jataka are beautiful. According to GajaJataka, LordBuddha was a white elephant in one of his lives. The emperor of Kashi caught him but he did not eat anything because of his separation from his mother. The Kashi Emperor noticed this and send him back to the jungle where his meeting with the mother has been very delicately painted, which depicts the mutual affection and tenderness of feelings among the elephants. According to another Jataka a war scene is painted in which 300 faces can be counted with different moods expressed on them.

BesantarJataka has also been beautiful painted in this cave. According to this a Brahman begs the only son of Siddhartha. Siddhartha is giving his only son to the Brahman without any hitch. The begging or Brahman with teeth out shows his poverty. The son is looking towards his father with a desire to obey him while Siddhartha has the peace of benevolence gleaming on his face. It is a very expressive painting.

There is one most beautiful, expressive and a famous big painting

in this cave, in which Yasohodhara has been shown offering her only son Rahul in charity to LordBuddha. The LordBuddha has returned after achieving Buddhatva (Divine knowledge)with bowl for alms in hand. It is clearly visible from the face of Yashodhara as if she is saving "What else have I got to offer you me Lord, except my only son Rahul"? Rahul is also shown raising his hand towards the Lord Buddha as if for his salvation. Yashodhara and Rahul are painted smaller in comparison to Lord Buddha, who has been painted about three times the size of them.

In this cave. Mriga Jataka story of two deers have been beautifully painted. The Ajanta artist have shown their dexterity by painting elephants, horses, and deer's. A dog also been painted which is not of a very high standard.

In Maha hansa Jataka also birds and animals have been beautifully painted. The story has been painted in two parts. In the first part the hunters have been shown catching the goose and in the second scene a palace has been shown in which the divine goose has been preaching to which king and his queen are patiently listening.

Towards the right side of this cave is SinghalAvadan. In this scene daring stories, sinking ship charm of beautiful dances and battle etc. have been painted. Beautifully decorated elephants, horses and faces full to emotions are unparalleled.

SutasanJataka has been beautifully painted. The geometrical effect in the architectural structure is clearly visible. The painting of figures in proportion to background has been nicely executed.

A lady doing her makeup, Sujata and other ladies are really beautifully painted in the cave.

1.6.5. Cave no. 19th

This is a Chaitya cave which has been decorated by Chisel work on stone. The roof decoration and painting of Buddha are dilapidated condition. 6th and 11th caves have also some painting of gate keepers and

Jatakas, which are of a poor standard. One pond has been painted in the 11th cave in which some ladies and children are shown bathing.

1.6.6. Cave no.1st

There is a famous and large painting in this cave known as "Mar Vijay" measuring 12'x18' in this painting Buddha is shown surrounded by the army of mar (God of love). This army includes ugly faces of giants as well as those of the lovelist women who are trying to disturb the tapa of the Buddha, but there is a definite expression of repose on his face who is sitting in meditation. It seems as if these outer worldly attraction have failed to disturb him. The expression of word peace and self-realization is clearly visible on his face with grace.

A world famous painting of "Padma PaniBuddisatava" in this cave, with a lotus in hand, the Buddha is shown with the expression of self-realization, renunciation and asceticism on his face. The painting has been done in bold lines and beautifull colour scheme.

The painting of Birj "VirjaPaniBuddisatva" has been beautifully executed in this cave. The beauty of crown is unparalleled because of its beauty or thousands of pearls embedded in it.

ChampeyaJataka has also been beautifully painted in this cave. According to which Buddha was a king of snakes in one of his past lives. He was taken as prisoner in the court of the king of Kashi, but realizing the truth, the king of Kashihonored him. In return of which Buddha gives his preaching. The whole Royal family is painted calmly listening to the preaching of the Buddha.

An Indian king Palkesin II has been shown welcoming the Ambassador of the emperor KhusroParvez of Persia. This reflect one of the cordial relations of India with Persia in those days. One copy of this painting is decorating the National Museum New Delhi. One lady with lotus in hand is also beautifully painted in this cave bull fight is also a beautifully painted here, in which two robust bull are fighting. There is life in this painting and lines are bold and rhythmic. such as SibiJataka, and a princess with pangs of separation etc. are there. The time of the painting of this cave

seems to be just after 600 A.D.

1.6.7. Cave no.2nd

Like other caves this has also got many Jataka and assemblies painted. The dream of Maya, Maha Hans Jataka and so many other scene of Buddha's birth are beautifully painted here. In this cave there is a famous painting of an old man, who is holding one stick in one hand and the other hand is giving an expression of "All is lost" This is the most expressive and famous painting of this cave.

In one scene the king of Kashi is sitting in anger with a sword in his hand and a women bending towards his feet whereas others are trembling with fear. According to the story Lord Buddha was Santiwadan Muni (A saint preaching pearl) in one of his past lives. The ladies of the harem of the king of Kashi have gone to listen to him with our obtaining royal permission. This was the only fault for which death penalty was given to all of them by the angry king.

"Lady standing by a pillar". The lady is standing with back towards the onlooker and one foot touching the pillar and she seems to be calculating something on fingers. There is one omission in this painting and that is that both the toes of the feet have been drawn on one side which is anatomically wrong. It is just possible that the artist while painting this one might have been lost in the decoration of the same and might have forgotten the anatomy of figure. A princess on the swing is also painted in this cave.

1.6.8. Cave No. 4 and 5:

This two monasteries are of architectural interest. Cave 4 is in fact the larger Vihara at Ajanta planned on an ambitious scale but left incomplete. The Verandah with eight octagonal columns, has a cell at either end. Three doors way lead into the hall where part of ceiling has collapsed. The ventral doorways is embellished with guardians, flying figures and maidens clutching trees and also Buddhas and ghanas with garlands (lintel). A panel to the right of door way shows Avalokeswara surrounded by the worshipper's, suffering torments. Only a few of the hall columns are richly decorated; the other resemble those of Varandah. The shrine has the usual arrangement of a central teaching Buddha with bodhistava attendants. The antechamber is provided with additional large standing Buddhas, two of which are unfinished.

1.6.9. Cave No.6:

This cave is carved on two levels the lower hall has sixteen octagonal columns arranged in four rows, without any large center space. The shrine doorways have an ornamental arch springing from open mouthed aquatic beasts within a shrine is a seated Budha accompanied by Mara and the Sravasti.

1.6.10. Cave No.12 and 15A:

The traces of wall paintings are seen within the hall in two layers, the earlier being contemporary with the excavation. On top the door way the heads of two ascetics are superimposed on an earlier composition in which a Naga deity's attendants are seated in a rocky shelter. The remnant of another older composition survives in a thin strip above the left colonnade; higher up are Buddha figures.

1.6.11. Cave No.19 to 24:

Cave 19 is a perfectly executed rock-cut chaitya at Ajanta and the most elaborate of the entire series. The columns of flanking wall are covered with ornate foliation, scrollwork, and jeweled bands. Between these are the numerous standing and sitting Buddhas. Similar figures which were carved later, appear on the side walls. Besides these are Buddha figures carved in delicate relief side chapels flank the court in the front. On the wall is delicately carved but fully modeled Naga couple seated on a rock equally elaborate is the treatment of the interior. Here seated Buddha figures as well as riders, flying figures, hermits and musicians adorn the column capital. The panels above depict Buddha surrounded by bands of scroll work. Rock-cut ribs are cut out of the vault the side aisles have flat ceiling. An innovation is the introduction of a Buddha image on the votive stupa, the master stands beneath an arch that springs from open mouthed makaras. The tier of umbrellas with supporting figures that rise above the stupa is monolithic. The painting of the ceiling of the aisle include floral motifs and Buddha figures.

1.6.12. Cave No.20:

It is a small monastery in which the antechamber protrudes into the hall. The verandah columns and bracket figures are delicately carved [like those of cave – 182] the roof has rock-out beams.

1.6.13. Cave No.22 and 24:

Ajanta cave 21 is a monastery, which has many richly ornamented columns. Above the shrines at the side of the verandah is Harit, accompanied by attendants (right) and the court of Naga King cave 22 is located at a higher level and consist of a small hall with unfinished cells.

1.6.14. Cave No.23:

It follows the scheme of cave 2 though it is not fully excavated. Even so the verandah doorway has delicately sculptured river goddesses and amorous couples carved on the jambs.

References

* *A Brief History of Indian Art by Lokesh Chandra Agrawal, Goel Publication House*

Dr. Rita Pratap
Editor (Atishay Kalit)
Ex-Associate Professor
Deptt. of Drawing & Painting
University of Rajasthan, Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

MUSEUM OF ISLAMIC ART DOHA (QATAR)

During my visit to Doha (Qatar) I happen to visit the famous Museum of Islamic Art. A brief introduction is given here.

The Museum of Islamic Art is a museum located on one end of the 7 kilometer long Cornish in the Qatar capital Doha.

In Doha there is a very different situation from most museums in the world. Being in the Middle East, in a small Islamic country of roughly one and half million residents and of these less than a quarter are Qatari citizens. The remainder are foreign workers ranging from migrant building labourers and others in low paid service jobs; Through middle management and clerical workers to highly skilled experts recruited for their specialist knowledge.

As such the Islamic Museum caters to a very mixed population from an extra ordinary large number of countries; the Middle East; South East Asia; South Asia; Western Europe; Eastern Europe and America. It is a population of very different national and cultural backgrounds and a very wide range of educational and economic positions.

What unites these communities is the relatively little developed museum culture within any of them, even among the more educated people in the finance or oil business, museum culture has not necessarily been a major part of their natural habitat. The only exception to a certain extent is the growing number of university staff in the faculties of education city.

So how do the museum of Islamic Art and its displays “fit” This potential audience profile.

The Museum is an extraordinary building, a great International master piece of 21st century architecture. It is imposing large in scales

perhaps even intimidating for some. The main atrium is over 50 meters tall – a very grand space indeed and the galleries where one encounter the art have a very strong personality : somber rich and dark in colour and texture, where the works of art spotlight to stand out individually and unashamedly as masterpieces in spaces that vanish into darkness above them. The question arises what messages are these spaces giving? How do they impart on the learning styles of our visitors? Do they properly support the aims of the museums?

What one think is that the goal of the Museum could be fairly summarized as the main lesson to be gained from the Museum of Islamic Art in Doha is one that is profound, simple and may be very important for art museum to understand. If you want to engage people in ideas and promote understanding through works of art. The key factor is the visual impart of these objects : The look and feel of the galleries in which they are displayed, and the display of the individual items. If objects are shown in such a way as to attract people's attention and interest, to persuade them to look, not just to glance then they will appeal to an enormously wide range of audiences and will accomplish our primary goal – to start the questions in their minds. The answers to these questions can probably be best provided not by the primary displays and their texts and labels, but by ancillary means – multimedia guides, tours, books, videos, lecture courses.

Collection : The museum of Islamic Art represents Islamic art from 3 continents over 1,400 years. Its collection includes Manuscripts, Metal work, Ceramics; Jewellery, Woodwork, Textiles, Ivory, Precious stones and Glass obtained from three continents including countries across the Middle East and reaching as far as Spain and China.

In 2008, Qatar's ambition to become the most important cultural destination of the Gulf area was materialized with the opening of the Museum of Islamic Art which was designed by **'Pritzber'** Prize winning architect **I.M. Pei.** At the age of 91, he travelled through out the Muslim world on a six month quest to learn about Muslim texts to draw inspiration for his design. He was later on inspired by elements of classic Islamic architecture. With his requirement the Museum was built on an island off an artificial projecting peninsula near the traditional dhow (Wooden Qatari Boat) harbour.

A purpose built park surrounds the edifice on the Eastern and Southern facades, while two bridges connect the Southern far out façade of the property with the main peninsula that holds the park. The Western and Northern facades are marked by the harbour showcasing the Qatari seafacing part. The museum was established on 22nd November 2008.

Architecture : The Museum is based on Ancient Islamic architecture but has a unique modern design involving geometric patterns. It is the first of its kind to feature over 14 centuries of Islamic art in the Arab states of the Persian Gulf.

Situated in an area of 45,000 meters the Museum is located on an artificial peninsula overlooking the south. A park of dunes and oaises on the shoreline behind the Museum offers shelter and a picturesque backdrop. Connected by two pedestrian bridges and a vehicular bridge, two hundred feet tall lanterns mark the dock on the west ride of the Museum, creating a grand entrance for guests arriving by boat. The desert sun plays a fundamental role in transforming the architecture into a play of light and shadows.

The museum has **Five Floors**.

The **First Floor** has special exhibition gallery; Auditorium, M.I.A gift shop, MIA café and library.

The **Second Floor** has a display of the figure in Art, Calligraphy. Introduction Gallery, Patterns and Science in Art.

The **Third Floor** has the display of Early Islamic Art – 7th to 12th century; Iran and Central Asia – 12th-14th century; Egypt and Syria 12th to 13th century; Egypt and Syria 14th-15th century; Iran and Central Asia 15th to 16th century; Iran 16th to 19th century. India and Turkey 16th-18th century.

The **Fourth Floor** has Mini Auditorium; Temporary Exhibition Galleries; and Study Gallery.

The **Fifth Floor** is Reserved.

Geometric Patterns in Islamic Art

The Islamic Art Geometric Patterns make up one of the three non-figural types of decoration which includes calligraphy and vegetal patterns. Geometric patterns are popularly associated with Islamic Art because

of its anionic quality, whether isolated or used in combination with non-figural ornamentation or figural representation. It was found that these intricate patterns already existed among the Greeks, Roman's consisting or generated these simple forms like circle, square and geometric patterns were combined, duplicated, interlaced and arranged in intricate combination thus becoming one of the most distinguishing features of Islamic art. These geometric ornamentation in Islamic Art suggest a remarkable amount of freedom in its repetition and complexity.

The four basic shapes or "repeat units", complicated patterns are constituted among which are circles, interlaced circles, squares or four sided polygons, the ubiquitons star pattern moreover derived from squares and triangles inscribed in a circle and multisided polygons.

Reference

* Personally visited the Museum.

** Information also collected from printed catalogue.

Dr. Jaishree Jain
Department of Psychology,
SMS Medical College Jaipur,
Rajasthan

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

THERAPEUTIC EFFECTS OF RELAXATION, MINDFULNESSMEDITATION AND YOGA ON MENTAL AND PHYSICAL HEALTH

Many different religious traditions in the world have given rise to a rich variety of Yoga,relaxation techniques and mindfulness practices, which have been practiced for millennia. These meditation practices have reflected the wisdoms, insights, inclinations, and cultures of their practitioners. Originally, they were intended to develop spiritual understanding, awareness, and direct experience of ultimate reality. The last four decades have witnessed a sharp attention and interest in meditation-based approaches to treating individuals with physical and mental health problems in the West.

Relaxation exercises offer a means to reduce the physiological and psychological reactions to stress [1,2]. Current achievement-based, demanding and high-tempo society has incurred increased risks and vulnerability for stress-related chronic pain and other illnesses [3-5]. A multitude of techniques for relaxation and stress-reduction are described, e.g. flotation-REST [6], Tai Chi Chuan [2], meditation [7] and yoga [8,9]

The different relaxation techniques often lead to specific psychological and physiological changes termed the ‘relaxation response’ (RR) [10]. The RR is identified as the physiological opposite of the stress or ‘fight-or-flight response’ [11). The RR is associated with instantly occur-ring physiological changes that include reduced sympa-thetic nervous system activity, reduced metabolism, lowered heart rate, reduced blood pressure, and decreased respiratory rate [12,1]. At the psychological level, individuals typically report that RR techniques result in genuine rest, recovery from fatigue, better sleep quality, as well as an increased sense of control and efficacy in stressful situations [13].

Yoga is one of the many different techniques for achieving relaxation. Yoga has its origin in ancient India and in its original form consisted of a system of spiritual, moral and physical practices [9]. The most central

and common aspects of yoga practice today are different bodily postures (asanas) and breathing exercises (pranayamas) [14,9] that aim to focus the mind, achieve relaxation and increase wellness. Various health benefits of yoga have been described in previous studies. A review of anti-depressive effects of different forms of yoga [9] indicated potential beneficial effects of yoga on depressive disorders. Other studies reported beneficial effects of yoga on anxiety, stress reduction and general well-being [15-17]. However, the results need to be interpreted carefully since many of the published studies about yoga are small and no systematic and comprehensive reviews of scientific research on yoga have been published. It may also be difficult to compare studies done on different forms of yoga since benefits of yoga practice might differ by the style of the practice [18].

SudarshanKriya and related Practices (SK&P) is a form of yoga practice that emphasizes breathing exercises. In addition to asanas, three different forms of pranayamas are practiced in succession [19]. Previous studies suggested that SK&P may be useful for relieving depression, improv-ing the antioxidant defenses of the body, giving rise to beneficial EEG patterns, and possible improvements in blood chemistry [19-21].

Historically, while meditation has been practiced for centuries by various cultures it is only recently that the effects of meditation have been studied more widely within the scientific community. One possible reason for the difficulty in researching meditation is that there seem to be as many unique descriptions of meditation as there are individuals.

Such challenges including those of methodology have been discussed by Caspi and Burleson (2005)[24]. Perez-de Albeniz and Holmes, (2000)[29] have reflected that meditation may be described as relaxation, concentration, altered states of awareness, suspension of logical thought, and maintenance of self-observing attitude. From a psychological perspective they describe meditation as an “intentional self-regulation of attention, in the service of self-inquiry, in the here and now” . Harvard Mental I Health Letter (2005)[28] states that meditation is “the systematic method of regulating attention”. From the Eastern world Buddhist meditation, Zazen, Chinese Qi Gong, and yoga, have long been practiced as a way of focusing the mind, deepening personal insights,

and gaining greater awareness of the present moment (La Torre, 2002) [27], while meditation in the Western world traditionally has had religious connotations and associations, mind-body techniques such as relaxation response (Benson and Corliss, 2004)[22], mindfulness meditation (Kalb, 2004)[26], and paced respiration (Ferrari, Kagan, Kessel, and Benson, 2004)[25]. Relaxation response involves a profound sensation of calmness achieved through means such as yoga, prayer, or breathing exercises (Benson, Corliss, and Cowley, 2004)[22]. Mindfulness meditation, defined by Shapiro, Schwartz, and Bonner (1998), is a "formal discipline that attempts to create greater awareness and consequently greater insight in the practitioner", and paced respiration is a breathing technique used to achieve relaxation (Ferrari, et al., 2004). Many techniques are remarkably similar regardless of the tradition. For example the Harvard Mental Health Letter (2005), Perez-de Albeniz and Holmes (2000), and Benson and Corliss (2004) all cite these methods for meditation: sitting in a comfortable position with eyes closed; choosing a word or short phrase to repeat silently to one's self; focusing attention on one's breathing; relaxing one's muscles from foot to head; accepting all thoughts, feelings, and memories without judgment; and being in the present moment, without succumbing to distractions.

Specific types of meditation, however, may have a prescribed format to follow. This is true of Mindfulness-Based Stress Reduction (MBSR), according to which participants engage in meditation for forty-five minutes, observe their thoughts and the physical sensations of the body, be aware of the present moment without forming judgments or interpretations, and accept the mental chaos of the mind as transient (Kalb, 2004).

Studies have also shown that meditation can bring about a healthy state of relaxation by causing a generalized reduction in multiple physiological and biochemical markers, such as decreased heart rate, decreased respiration rate, decreased plasma cortisol (a major stress hormone), and decreased pulse rate. Other physiological mechanisms include increased EEG (electroencephalogram) alpha, a brain wave associated with relaxation, hemispheric laterlization and brain wave resonance and coherence, and a shift in the balance between the activating and queitening components of autonomic nervous system.

Kabat-Zinn observes that mindfulness is a universal human faculty that

is recognized in all cultures of the world for its intrinsic and transformative qualities. It is not limited by cultural boundaries and has acquired a fundamental place in behavioral medicine, which explicitly recognizes the interconnection of body and mind in its scientific understanding of disease and health. Therefore, different meditation practices are taught independent of the religious and cultural beliefs associated with them. Mindfulness can: i) stimulate one's body's mechanisms of regeneration through a direct effect on neurophysiological, hormonal and immune responses, ii) decrease the intensity of, and sometimes eliminate physical and psychological symptoms, ranging from anxiety and high blood pressure to various types of physical pain, iii) positively modify the course of illnesses, leading to an improved prognosis and lifestyle, or at times remissions, iv) decrease the likelihood of a relapse after a depressive episode, v) increase energy levels and the ability to relax, vi) free-up one's creative potential as the world takes on a more nurturing quality, and vii) create a sense of one's life being more meaningful.

Mindfulness over the last two decades have proven to be effective in the subjects of clinical as well as subjects of non-clinical population who experience symptoms of stress, psychological disorder or stress related medical condition. It also enhances well-being by improving the coping skills of the individual and modifying the way in which a person perceives the stress. The clinical and other studies on mindfulness meditation and the Mindfulness-Based Stress reduction (MBSR) developed by Kabat-Zinn at the University of Massachusetts show its effectiveness in chronic pain, chronic disease, cancer, fibromyalgia, psoriasis, stress reduction, anxiety and depression. Research has shown that the majority of people who went through Vipassana or mindfulness based treatment programs report lasting reductions in both physical and psychological symptoms. Their attitude and behavior undergo deep, positive changes that are rooted in a less conflicted perception of self, others and the world. This results in an increased ability to cope effectively with both short-term and long-term stressful situations. Therefore, mindfulness meditation and therapeutic programs based upon its basic assumptions and practices can be used effectively in the treatment of a wide range of mental and physical health problems.

Attempts have been made to define meditation in operational and

objective terms. According to Smith the term meditation refers to “a family of mental exercises that generally involve calmly limiting thought and attention”. Using attentional mechanisms as the basis for the definition, Shapiro defines meditation as “a family of techniques which have in common a conscious attempt to focus attention in a no analytical way and an attempt not to dwell on discursive, ruminating thought.” Such exercises vary widely and can involve sitting still and counting breaths, attending to a repeated thought, or focusing on virtually any simple external or internal stimulus. Attentional strategies which are part of meditative practices can be grouped into three categories: a focus on a specific object within a field, a focus on the whole field, and a shifting back and forth. Broadly, all the methods of meditation can be classified into two basic approaches: concentrative meditation and mindfulness meditation. In concentrative meditation the attention is focused on the breath, an image, or a sound (mantra), in order to still the mind and allow a greater awareness and clarity to emerge. This is like a zoom lens in a camera where focus is narrowed to a selected field.

Mindfulness meditation involves expansion of the attention or awareness to become aware of the ongoing of sensations and feelings, images, thoughts, sounds, smells, and so forth without becoming involved in thinking about them. Mindfulness meditation can be likened to a wide-angle lens be aware of the entire field. In integrated meditation a shifting back and forth of attention occurs.

One of the most systematic and intricately laid out Eastern psychologies is classical Buddhism, known as Abhidhamma in the Pali, the middle Indo-Aryan language of north Indian origin spoken in the Buddha’s time. The Abhidhamma or Abhidharma (in Sanskrit) means “the ultimate doctrine” elaborates original insights of Gautama the Buddha (536-438 B.C.) into human nature. As a prototype of Asian psychology Abhidhamma presents us with a set of concepts for understanding the working of mind3. Over the period, Buddha’s teachings have been refined and evolved into the various lineages, teachings, and schools of Buddhism. Each school of Buddhism has developed his basic psychological insights into different systems of theory and practice.

Today when we look back, Buddha not only evolved a new technique of meditation the mindfulness but also recommended that meditation

must be essential part of life as a continuous process. Buddha gave a totally new vision of meditation to the world, before Buddha meditation was something that you had to do once or twice a day. Buddha gave a totally new interpretation to the whole process of meditation. Meditation cannot be something that you can do apart from life just for an hour or fifteen minutes. Meditation has to become something synonymous with our life; it has to become like taking breathing. It should become such a constant phenomenon, only than it can transform us and lead to conscious living.

References:

1. **Hoffman JW, Benson H, Arns PA, Stainbrook GL, Landsberg GL, Young JB. Gill A: Reduced sympathetic nervous system respon-sivity associated with the relaxation response. Science 1982, 2 l 5(4529):190-192.**
2. **Sandlund ES & Norlander, T.: The effects of Thai Chi Chuan relaxation and exercise on stress responses and well-being: An overview of research. Journal of Stress Management 2000, 7:139-149.**
3. **Lundberg U & Melin, B.: Stress in the development of muscu-loskeletal pain. In Avenues for the prevention of chronic musculoskele-to/ pain and disability Edited by: Linton S. Amsterdam , Elsevier Science; 2002:165- l 79.**
4. **Lundberg U & Wentz, G.: Stressadhjarna, stressadkropp. Om sambandetmellanpsykisk stress ochkroppsligohalsa (Stressed brain, stressed body. The link between psycholog-ical stress and bodily health). Falun, ScandBook AB; 2004.**
5. **Lundberg U: Stress hormones in health and illness: the roles of work and gender. Psychoneuroendocrinology 2005, 30(1 0):1017-102 l.**
6. **Kjellgren A: The experience of flotation-REST (Restricted Environmental Stimulation Technique): Consciousness, cre-ativity, subjective stress and pain. In Psychology Volume Ph.D..Goteborg , Goteborg University; 2003.**
7. **Jevning R, Wallace RK, Beidebach M: The physiology of medita-tion: a review. A wakeful hypometabolic integrated.1 lie %Jewry',response. Neuroscience and biobehavioral reviews 1992, l 6(3):415-424. 8.**
8. **Bhatia M, Kumar A, Kumar N, Pandey RM, Kochupillai V, EEG study, BAER study, P300 study: Electrophysiologic evaluation of SudarshanKriya: an EEG, BAER, P300 study. Indian J PhysiolPharmacol 2003, 47(2):l57-163.**
9. **Pilkington K, Kirkwood G, Rampes H, Richardson J: Yoga for depression: the research evidence. Journal of affective disorders 2005, 89(1-3):13-24.**
10. **Benson H, Greenwood MM, Klemchuk H: The relaxation response: psychophysiologic aspects and clinical applica-tions. International journal of psychiatry in medicine 1975, 6(1-2):87-98.**
11. **Esch T, Fricchione GL, Stefano GB: The therapeutic use of the relaxation response in stress-related diseases. Med SciMonit 2003, 9(2):RA23-34.**
12. **Bleich HL, Boro ES: Systemic hypertension and the relaxation response. The New England journal of medicine 1977, 296(20):1152-1156.**

13. Setterlind S: [From hypnosis and suggestion to relaxation and meditation. A research review - in Swedish]. Orebro ,Welins; 1990.

14. Parshad 0: Role of yoga in stress management. The West Indian medical journal 2004, 53(3):191-194.

15. Lavey R, Sherman T, Mueser KT, Osborne DD, Currier M, Wolfe R: The effects of yoga on mood in psychiatric inpatients. Psychi-atric rehabilitation journal 2005, 28(4):399-402.

16. Malathi A, Damodaran A: Stress due to exams in medical stu-dents—role of yoga. Indian J PhysiolPharmacol 1999, 43(2):218-224.

17. Ray US, Mukhopadhyaya S, Purkayastha SS, Asnani V, Tomer OS, Prashad R, Thakur L, Selvamurthy W: Effect of yogic exercises on physical and mental health of young fellowship course train-ees. Indian J PhysiolPharmacol 2001, 45(1):37-53.

18. Cowen VS & Adams, T.B: Physical and perceptual benefits of yoga asana practice: results of a pilot study. Journal of Bodywork and Movement Therapies 2005, 9:211-219.

19. Janakiramaiah N, Gangadhar BN, Naga Venkatesha Murthy PJ, Harish MG, Subbakrishna DK, Vedamurthachar A: Antidepressant effi-cacy of SudarshanKrir Yoga (SKY) in melancholia: a rand-omized comparison al., electroconvulsive therapy (ECT) and imipramine. Journal of affective disorders 2000, 57(1-3):2S5-259.

20. Naga Venkatesha Murthy PJ, Janakiramaiah N, Gangadhar BN, Sub-bakrishna DK: P300 amplitude and antidepressant response to SudarshanKriya Yoga (SKY). Journal of affective disorders 1998, 50(1):45-48

21. Sharma H, Sen S, Singh A, Bhardwaj NK, Kochupillai V, Singh N: SudarshanKriya practitioners exhibit better antioxidant sta-tus and lower blood lactate levels. Biological psychology 2003, 63(3):281-291.

22. Benson, H., & Corliss, J. (2004, September 27). Ways to calm your mind. Newsweek, 144, 47.

23. Benson, H., Corliss, J. & Cowley, G. (2004, September 27). Brain check. Newsweek, 144, 45-47.

24. Caspi, 0 & Burleson, K. 0. (2005). Methodological challenges in meditation research. Advances in Mind-Body Medicine, 21 (1), 4-11.

25. Ferrari, N., Kagan, L., Kessel, B., & Benson, H. (2004, September 27). Easing the transition. Newsweek, 144, 74.

26. Kalb, C. (2004, September 27). Buddha lessons. Newsweek, 144, 48-51.

27. La Torre, M. (2002). Enhancing therapeutic presence. Perspectives in Psychiatric Care, 38, 34-36.

28. Harvard Mental Health Letter (2005, April). Meditation in psychotherapy. 21 (10), 1-4. Maslach, C, Jackson, S.E., &Leiter, M.P. (1996). Maslach Burnout Inventory Manual. Third Edition. Mountain View, CA: CPP, Inc.

29. Perez-de Albeniz, A. & Holmes. J. (2000). Meditation: Concepts, effects and uses in therapy. International Journal of Psychotherapy, 5, 49-58.

30. Shapiro, S., Schwartz, G. E., & Bonner, G. (1998). Effects of mindfulness-based stress reduction on medical and premedical students. Journal of Behavioral Medicine, 21, 581-599.

Dr. Shashi Goel
Visiting Faculty
Qatar University
DOHA

ATISHAY KALIT
Vol. 6, Pt. A
Sr. 11, 2017
ISSN : 2277-419X

INDIAN MIGRATION AND THE GULF

This article examines Indian migration through the Persian Gulf states. In the five small oil-producing states that line the Persian Gulf-Kuwait, Qatar, Bahrain, the United Arab Emirates, and Oman-two-thirds of the labor force is imported. Nowhere in the world have societies experienced such massive labor shortages satisfied not through open migration but through the use of temporary imported workers. The United States, Australia, and Canada, among others, expanded economically and demographically through permanent migrations. Postwar Europe recruited temporary "guest workers" from the Mediterranean countries and the United States has also employed temporary migrants (both legal and illegal) from Latin America, but the size of this labor force in relation to the local population in each in- stance is small compared with the proportion of migrants in the Gulf States.

Migration may accelerate an individual's progress along a culturally idealized trajectory towards mature manhood; it may accentuate characteristics already locally associated with essentialized categories of masculinity. This suggests that we need to be careful about reading into migration the understandings which recent theories have brought us. Migration may help understand fragmented selves, but it is by no means the case that fragmented selves are necessarily involved in all migration. Even unstable and fragmented selves are framed in action within local essentialisms: as Herzfeld suggests, 'the presence of agency only becomes apparent through the essential in practices that give it form' (1997: 144).

Countries in the Persian Gulf region have had a long-established economic and political link with India. Trucial Oman (now UAE),

was nominally independent in the 19th century but was administered by the British Raj; trade and banking sectors in the territory were administered by the Khoja and Kutchi communities of India. In 1853, the rulers of the emirates signed a *Perpetual Maritime Truce* with the British, effectively bringing the region under Britain's sphere of influence. Administered from British India, the emirates developed commonalities with South Asia. Indian Rupees were used as currency, as were Indian stamps (overlaid with the name of the emirate) for postal correspondence.[1]A fairly homogeneous society at the turn of the 20th century, the region that now comprises the UAE experienced an economic boom as a result of the pearling industry; the few Indian traders emigrating to the emirates moved to the coastal towns and remained on the fringes of Emirati society.[2]

As countries with great wealth, low populations, and labor shortages, the Gulf governments might have decided to encourage permanent migration. And if they sought to avoid the social complications associated with increased ethnic heterogeneity, they could have selectively opened their doors to permanent migrants from neighboring Arab countries. But as monarchies the Gulf states fear the political erosion that might accompany massive permanent migration from countries that have overthrown their monarchies; as small states, they fear being politically overrun by their larger neighbors if they allow foreigners to become citizens; and as tribal chieftains-notwithstanding pan-Arab and pan-Islamic rhetoric-their first concern is with maximizing the economic well-being of members of their own tribes.

The role of migration in economic growth clearly does not apply to the small oil-rich countries of the Gulf. As capital-rich, labor-short countries, they are not concerned with creating labor-intensive industries to increase employment or with reducing luxury consumption and increasing the rate of savings to stimulate investment; nor are they faced with the problem of obtaining financial resources for delivering medical services, education, drinking water, housing, and sanitation. There is no debate in these countries on the issues of growth versus income distribution, consumption versus savings, industrial versus agricultural development, export-oriented growth versus importsubstitution. Our understanding of the role of international migration in economic growth, our appreciation of how private and social gains and losses are distributed by international migration and our assessment of the long-term domestic and international

consequences of migration seem inadequate for analyzing what is happening in the Gulf.

The governing elites of the Gulf States have been concerned with two questions: how to use their abundant wealth to develop their countries; and how to do so with the least disruption of the existing political structure. The Gulf States share common strategies: they have each decided to share the wealth (butnot political power) with their own populations through the expansion of social services and government employment, to diversify their economy by industrial investment, and to erect modern infrastructure-airports, roads, communications networks. To pursue these objectives, they import workers to construct and operate new facilities and industries and to provide services. They havedecided not to permit migrants to become citizens.

Effects of the Gulf Migration on the Indian economy

Huge oil reserves were discovered in the Eastern Arabia region (Arab states of the Persian Gulf) in the 1930s, with large-scale commercial extraction beginning in the early 1950s. Soon, these countries became major world oil-exporting countries, amassing huge riches within a matter of years, a feat that perhaps has no historical parallel. However, these nations were handicapped by small populations and labor forces, with commensurately small skills levels. To meet the challenge they faced, they had to substantially increase immigration at all levels. India, which faced very high unemployment rates, quickly saw the opportunity for its citizens to gain a share of the new work opportunities, with manual workers from Kerala at the forefront. Historical ties and the religious identity of Indian Muslims—Keralite migrants are disproportionately Muslim[3]. In particular, helped to forge a bond with Gulf Countries.

India earned US$2.7 billion dollars in remittances from migrants abroad in 1978 and $3.2 billion in 1979.[4] No official figures are available on the magnitude of the remittances from the Gulf states and other Middle East countries, but unofficially the figure has been placed as high as $1.6 billion.[5]Such a high number would imply either very high average remittances from the estimated half million Indian migrants in the Middle East or a larger number of workers than officially reported; however, the number is not implausible, and comparable figures have been found in a study of remittances of the Pakistani migrants in the Middle East.[6]

The planning board of the Indian state of Kerala estimates that about $500 million in remittances from the Gulf flows into that state alone each year, while the director of the state bureau of economics and statistics estimates that 300,000 Keralites lived abroad in 1979, with the largest share employed in the Gulf.[7] In all, remittances from migrants abroad to India[8]were large enough in the 1970s to cover the deficit in India's trade balance and enabled India to increase its reserves in spite of the rise in oil prices.

Emigration provides a significant safety valve for India's unemployed, most notably from the states of Kerala, Karnataka, Goa, Maharashtra, and Gujarat on India's west coast,and from the Punjab.[9] Emigration to the Gulf is particularly high among the educated. The persistently high level of unemployment among the educated, the migration notwithstanding, suggest a brain "overflow" rather than a brain "drain." In Kerala, for example, 1.2 million jobseekers were registered with employment exchanges in December 1979, andhalf of these were educated-512,000 high school graduates, 67,000 pre-degree certificate holders, 54,000 college graduates, and 8,500 postgraduates." Although there are shortages of skilled labor in the construction industry in Kerala, and there is an element of selective migration (one study reveals that two-thirds of those who migrate were employed at the time they left), emigration from India has not produced the kind of loss of human resources experienced by some of the Mediterranean countries.

Remittances are a key source of income for India economy and especially In Kerala State. In 2003 for instance, remittances were 1.74 times the revenue receipts of the state, [10] times the transfers to the state from the Central Government, 1.8 times the annual expenditure of the Kerala Government, and 15 to 18 times the size of foreign exchange earned from the export of cashew and marine products.[11]

Gulf migrants, many of whom were from the working and the lower-middle classes, gradually gained social status. A myth was in the making: that of the 'Gulf man'. Gulf migrants were highly sought after as bridegrooms. Their attractive earnings, irrespective of their shortcomings, enabled them to marry into wealthy and respected families when they returned home.

The Gulf Dream has also found its expression in Malayalam cinema

and literature. M. Mukundan's DaivathinteVikrithikal draws out in detail the socio-economic impacts of Gulf migration on the enclave of Mahe. Pathemari (English: Dhow) is a 2015 Malayalam-language period drama film written and directed by SalimAhamed whose plot follows the life of Pallikkal Narayanan (Mammootty) who migrated to the Middle-East in the early 1960s, when the Kerala Gulf boom was just beginning.

Among the South Asians, we focus on the Indians who are the most skilled part of the South Asian labor force.Both the Gulf governments and South Asian governments view this migration as temporary. The Gulf governments insist that in time the local labor force will take over jobs now performed by migrants. The Indian government earned from migrants a short-term contribution to foreign exchange. State governments within India make no particular effort to "capture" remittances for investment or to take emigration or return migration into account in manpower planning. The Indian migrants themselves assume that their sojourn is temporary, and while they put considerable resources into creating community life within the Gulf, they send most of their money home, return to India regularly, and in most ways act as if their stay is temporary. There is an illusion of impermanence on the part of all the participants-the host governments, governments of the sending countries, and the migrants themselves.

TABLE 1 National and migrant populations in the Gulf, 1975[12]

	Citizens		Migrants		Total
State	No.	Percent	No.	Percent	Population
Kuwait	472,000	47.4	523,000	52.6	995,000
Bahrain	224,700	76.1	70,500	23.9	295,200
United Arab Emirates	200,000	30.5	465,000	69.5	656,000
Oman	550,000	79.1	145,000	20.9	695,000
Qatar	60,000	38.0	98,000	62.0	158,000
Total	1,506,700	53.9	1,292,500	46.1	2,799,200

SOURCE: J. S. Birks and C. A. Sinclair, Arab Manpower: The Crisis of Development (New York: St. Martin's Press, 1980).

Tables 1 summarize the distribution of nationals and migrants in the total populations and in the labor force of the Gulf States.

Out of all migrants in 1975 the Indian population in the five Gulf

States numbered 223,000, of whom 134,000 were in the labor force.[13]by 1979, there were an estimated 333,000 Indians living in the Gulf.[14] Pakistanis numbered 335,000 in 1975, of which 166,000 were in the labor force. In the United Arab Emirates and in Qatar, South Asian workers outnumber native Arab workers by about three to one. What for Pakistan and India represents a small trickle of emigrants' constitutes a torrent for the Gulf.[15]

The Indian government, public and private sector con-tractors, Indian exporters, Indian banks, the state governments, Indian airlines, and the migrants and their families all look favorably upon this migration. This is not to say that migration does not generate costs: dislocation of households, inflation of land prices in areas from which migrants come, some loss of skilled labor, and problems for the migrants in the Gulf that have created political problems for the Government of India. But on balance, the migration is widely viewed in India as a net gain.

Reference:

1. R Perry, B Maurer. *Globalization Under Construction: Govern-mentality, Law, and Identity*(page 142). University of Minnesota Press. 2003 ISBN 0-8166-3966-3
2. Abed, Hellyer. United Arab Emirates: A New Perspective (page 114). Trident Press. 2001
3. "Remittances: Like manna from heaven". The Economist. *5* September 2015. Retrieved 5 September 2015.
4. Remittances and its impact on the Kerala Economy and Society, S IrudayaRajan and K.C. Zachariah
5. RajuKurian and DilipThakore, "Gulf money in Kerala: Coping with the problems of plenty," Business India, 25 June 1979.
6. According to a 1979Government of India, Ministry of External Affairs, there are 10,657,000 persons of Indian extraction living abroad, of whom 6.6 million have foreign citizenship. Less than a million live in Great Britain, the United States, and other developed countries. Of the remaining 9.2 million, the largest numbers are in Malaysia, Nepal, Sri Lanka, Surinam, Singapore, Guyana, Fiji, and Trinidad. Most of these settlers have lived in the diaspora for one or more generations, have settled with their families, and, with the exception of tea plantation workers in Sri Lanka and some of the settlers in Nepal, now have citizenship in the country in which they live. Approximately a half million Indians reside in the Middle East, all with Indian citizenship, and most are migrants. In addition to the 333,000 residing in the Gulf States reported here, another 100,000 live in Saudi Arabia, 21,000 in Iran, 20,000 in Iraq, 17,000 in Yemen (PDR), and

10,000 in Libya. For a comprehensive account of the history of the Indian diaspora during the era of British rule, see the trilogy by Hugh Tinker, director of the Institute of Race Relations in London. The first volume, A New System of Slavery: The Export of Indian Labour Overseas, 1830-1920 (London: Oxford University Press, 1974), describes the export of Indians to the sugar, coffee, tea, and rubber plantations in Mauritius, South and East Africa, the Caribbean, Guyana, Ceylon, Malaya, and Fiji.

The second volume, Separate and Unequal: India and the Indians in the British Common-wealth, 1920-50 (Delhi: Vikas Publishing House, 1976), deals with the political struggles of the overseas Indians. The third volume, The Banyan Tree: Overseas Emigrants from India, Pakistan and Bangladesh (NewYork: Oxford University Press, 1977), de-scribes the expulsion of South Asians from many of the former British colonies-ending, in some instances, a diaspora 100 years old.

7. Data on emigration from India by state of origin are not available. But one indication of the order of magnitude is the number of passports issued by each of the regional passport offices. In 1977, the two passport offices in Kerala issued 170,000 passports, and in 1978 300,000. The Hindu Overseas Edition, 9 February 1980.

8. Mathew Abraham, “Kerala unemployment zooms,” India Abroad, 21 November 1980.

9. Among the few studies of the impact of migration on Kerala are: B. A. Prakash, “Impact of foreign remittances: A case study of Chavakkad Village in Kerala,” Economic andPolitical Weekly 13, no. 27 (8 July 1978); andE. T. Mathew and P. R. Gopinathan Nair, “Socio-economic characteristics of emigrants and emigrants’ households: A case study of two villages in Kerala,” Economic and Political Weekly 13, no. 28 (15 July 1978). Migrantsfrom Kerala are criticized for their failure to put remittances into “productive” investment at home, but few investors in India have found Kerala an attractive place to invest. Banks,private firms, and the government of Keralahave not developed any incentives for migrants to invest their savings. Critics of the Marxist-led government of Kerala have said that the government has been more concernedwith questions of income distribution and mobilizing political support than with marshaling resources for the development of the economy.

10. Some observers have noted that the improvement in the financial and social status ofreturning Muslims in Kerala has contributed to the growth of Islamic schools, mosques, and other Muslim institutions in the state. How much of the increasing political awareness, militancy, and, in some localities, fundamentalism on the part of Muslims is a result of return migration is unclear. Still other critics point to the “de-radicalizing” effects of migration, arguing that improving the income and status of migrants, increasing the wages of local people, and siphoning off those who might

government permission for workers to leave.After protests from agents, who found the process time consuming, and a challenge tothe constitutionality of the procedure, the Supreme Court issued a judgment (in March 1979) declaring that the procedures established by the Labor Ministry were technically flawed. The responsibility was then transferred to the Ministry of External Affairs, which had had responsibility for migration since the Emigration Act of 1922. The Ministry of External Affairs established a proceduregroups.

11. Under a Kuwaiti regulation, an immigrant may bring his family in only if he earnsat least US$1,500 a month. Most Gulf stateshave similar regulations.

12. Addleton, J.S. 1992 Undermining the centre: Gutf migration and Pakistan. Karachi: Oxford University Press.

13. Amnjad, R. 1989. An overview. In To the Gulf and back: studies on the economic inmpact of Alabour migration (ed.) R. Amjad, 1-27. New Delhi: I.L.O.

14. Ballard, R. 1986. The political economy of migration: Pakistan, Britain and the Middle East.